आर्यसमाज में शान्ति का सत्योपाय
और
रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन
प्रथम भाग

मांस खाना पाप है अर्थात् पवित्र वेद सच्छास्त्रों के दृष्टिकोण से मांसाहार का खंडन और विरोधियों के प्रश्नों का उत्तर।

जिस समय संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था और सच्छास्त्रानुसार लोग अपने जीवन का सुधार करते थे उस समय न तो जड़ोपासना का नाम था और न मूर्तिपूजा का वहमो+ गुमान× था। ईश्वर के वराह और नृसिंह अवतार नहीं माने जाते थे और न उसे गोपियों के साथ वास विलास और रास लीला के कलंक लगाए जाते थे। एक जगदीश्वर के अतिरिक्त किसी देवता की पूजोपासना नहीं जानते थे और पंच महायज्ञों के अतिरिक्त किसी पीर परस्ती अथवा गुरु पूजा को नित्यकर्म नहीं मानते थे। उस समय माता, पिता, अतिथि, आचार्य और परमात्मा इन पांच के अतिरिक्त किसी और से प्रयोजन न था और न कोई उपासना के योग्य गणना में आता था। चारों वर्ण और चारों आश्रम गुणकर्मानुसार जारी और सारी खुदाई का इस पर आचरण था। उस काल के देवता दिव्यगुणयुक्त, सत्त्वगुणी, शान्तात्मा, कामक्रोध, लोभ मोहाहंकार इन पांच विकारों से सुरक्षित, भक्त और पुण्यवान् हुआ करते थे। न तो उन दिनों काली, ज्वाला, पशुपतिनाथ या भैरु जी संसार की पृष्ठभूमि पर विराजमान थे और न चामुंडा, डाकिनी, शाकिनी आदि नामधारी देवता प्रमाण योग्य थे। यदि कहीं ईश्वर न चाहे यह विद्यमान थे तो भी इस शरीर और इस भोजन से सर्वथा रहित थे। न उनके यह रूप थे और न ऐसी भयानक मूर्तियां एक शानदार युग तक विद्यमान थीं।

इसी प्रकार सत्य का दौर-दौरा रहा और ईश्वर पूजा की समस्त संसार में प्रसिद्धि रही। अन्ततोगत्वा वैवस्वत मनु की २८ वीं चतुर्युगी के तीन युग (कलियुग) की संधि के समय "हरकमाले राज़िवाले"✎ के अनुसार उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई आर्य जाति को आलस्य ने आ घेरा और और दुराचार तथा व्यभिचार ने उनके मन के संसार पर डेरा जमा दिया। मद्यपान, मांस सेवन, मछली को कूट और भून कर खाना, दुराचार मुद्रा (वाममार्गियों का विशेष चिह्न) एक दूसरे के पश्चात् फैलाने लगे। सर्वतः प्रथम राजाओं में इसका आरम्भ हुआ क्योंकि दूसरों की अपेक्षा यह सामान इन्हें शीघ्र सरलता से प्राप्त हो सकते हैं कोई दंड देने वाला भी नहीं होता और न किसी का

+ भ्रम × विचार।

✎ प्रत्येक उन्नति को अवनति भी प्राप्त होती है। (अनुवादक)

भय होता है। राजाओं के पुरोहित अथवा आचार्य प्रायः पालीसी के पुतले होते हैं जिधर राजा की रुचि देखी झट उसी के अनुसार श्लोक बनाने लगे। सअ़दी नें कहा है कि :—

अगरशाह रुज़ रागोयदशबस्त ईं।
बबायद गुफ्त ईनक माहव परवीं ॥+

और एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि :—

खिलाफ़ राए सुलतान राए जुस्तन।
ज़िखूने स्वेश बायददस्त शुस्तन ॥✲

सत्पुरुषों, महात्माओं और सर्वसाधारण से छिपाए रखने के लिये साधारण बोल-चाल में इन वस्तुओं के दूसरे नाम रखे गये। मद्य का नाम तीर्थ, मांस का नाम शुद्धि और पुष्प तथा महाप्रशाद, मछली का नाम जलतुम्बिका, मुद्रा का नाम चतुर्थी, मैथुन का पंचमी, वैश्या का नाम देवांगना, अप्सरा और कुल वधु, तथा इनके प्रयोक्ताओं के नाम कौल, आर्द्रवीर, शाम्भवगण और जो लोग इन्हें बुरा समझते, उनका नाम कंटक, विमुख, शुष्कपशु रखा। इस सम्पूर्ण मक्कारी का और फ़रेब का अभिप्राय यह था कि कोई पहचान न कर सके और किसी पर यह रहस्य प्रगट न हो, प्रथम पूरी, कचोरी, शराब और दुराचार से इसका आरम्भ हुआ। मांस उसके पश्चात् सम्मिलित किया गया किन्तु खाने न खाने की स्वतन्त्रता दी गई क्योंकि उन्हें ज्ञात था वा अनुभव करके देख लिया था कि दुराचार और मद्यपान के साथ मांस सेवन से मनुष्य बच नहीं सकता। पुनः इस मांस सेवन के दो भाग किये गये—खुश्की के पशुओं का मांस और समुद्री प्राणियों का मांस। संक्षेपतः धीरे-धीरे मुर्ग़ी-मुर्ग़ा से लेकर बकरी-बकरे तक पहुंचे। किन्तु यहां तक धैर्य किस प्रकार हो सकता था, गाय, भैंस और मनुष्य तक खाने लगे और उस समय वाममार्ग न रहा किन्तु अघोरी और कौल हो गया अर्थात् सिर से पांव तक सर्वथा अन्धकार। जैसा कि उनके ग्रन्थों में लिखा है कि :—

अघोरात् परतरं नास्ति, कौलात् परतरं नास्ति।

दुराचार भी केवल विवाहिता स्त्रियों तक सीमित न रहा। वेश्याओं, विधवाओं से गुज़र कर चूढ़ी, चमारी, धोबिन, कसाईन, कलालिन, चंडालिन तक फैल गया और माता, बहिन का भेद न रहने दिया। मद्यपान के लिए मटके भर दिए गए। दुराचारी व्यभिचारी राजाओं को प्रसन्न करने के कारण जिन्होंने सबसे अच्छे श्लोक बनाए, वही अधिक प्रिय होकर जागीरदार और पदाधिकारी बनाए गए। इस अपवित्र इच्छा को पूर्ण करने के हेतु वेद मंत्रों के अर्थों में खेंचा तानी होने लगी और किसी ने कहा भी है कि :—

कामातुराणां न भयं न लज्जा।×

+ यदि राजा दिन को कहे कि यह रात है तो कहना चाहिये कि यह चाँद और तारे हैं। (अनुवादक)

✲ बादशाह की इच्छा के विरुद्ध सम्मति देना अपने रक्त से हाथ धोने के समान है। (अनुवादक)

× कामातुरों को न भय और न लज्जा होती है। (अनुवादक)

जब वेदों से उनकी इच्छानुसारी कामना पूर्ण न हो सकी और पांच मकारों को सिद्ध कर सकने वाले मंत्र न मिल सके तो बाधित हो कर वेदों को द्वितीय श्रेणी में ठहरा कर उनसे ऊपर प्रथम श्रेणी में शाम्भवी विद्या के ग्रन्थ नियत किए गये। जैसा कि हठ दीपिका में लिखा है कि :—

वेद शास्त्र पुराणानि समस्त गणिका यथा।
एकैव शांभवी विद्या गुप्ता कुल वधूरिव ॥

वेद, शास्त्र, प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ यह तो वेश्याओं की भान्ति प्रगट बातों का वर्णन करते हैं, केवल एक शांभवी विद्या अर्थात् वाम मार्ग के ग्रन्थ ही हैं जो पर्दा में गुप्त कुल वधु की भान्ति गुह्य रहस्य बताते हैं। (विस्तृत देखो सत्यासत्य विचार संस्करण १८७९ ई०)

पाठक वृन्द ! इस श्लोक का विशेष अभिप्राय और गुप्त प्रयोजन आप समझ गए होंगे। स्वयं वाम मार्गियों ने भी जब वेद से अपनी इच्छा पूर्ति इच्छानुकूल सैंकड़ों खेंचातानियों पर भी न देखी तो बाधित होकर पृथक् हुए और स्पष्ट कह दिया कि वेद उन गुप्त बातों अर्थात् पांच मकारों की आज्ञा नहीं देते वह तो बाह्य कर्मकांड और संध्या गायत्री के प्रचारक हैं। पुनः वाममार्गी राजाओं ने और उनके अनुकूल गृहस्थियों ने श्राद्धादि सत्कर्मों और अतिथि सत्कारों में भी मांस ही देना शुरू किया। उस समय की पुस्तकों में लिखा है कि सैंकड़ों बार इन लोगों ने अन्य पशु तो एक और दूसरों के बाल बच्चे मार कर स्वयं खा लिए अथवा आए हुए अतिथियों को खिला दिए और लाखों बार देवताओं पर मनुष्यों का रक्त बहा दिया। भागवत जानने वाले जड़ भरत की कथा से अच्छी प्रकार परिचित हैं।

वाम मार्ग के लिए न तो जीवित विद्वानों को देवता माना गया और न किसी मरे हुए ऋषि मुनि की पूजा की गयी। किन्तु नए देवता और नवीन देवियां कल्पित की गईं जिनका सत् शास्त्रों में कुछ भी वर्णन नहीं। जैसे पशुपति नाथ, काली, चंडी, चांडाली, महाकाली, कामुक्ष्या, ज्वाला, चामुंडा, भूतनाथ, भैरों, डाकिनी, शाकिनी, बगुलामुखी, आदि इसी प्रकार उनका भोजन भी सम्पूर्ण ऋषि मुनियों के विरुद्ध नियत किया गया है। माँस, शराब, मुर्दा, हड्डी, वमन और ऐसे हो कुत्सित उनके लिवास (पहरावे) और सवारियां नियत की गईं।

चोली मार्ग, पांच मार्ग, तान्त्रिक, कौल, मशअलकशां, ज़ाकरिया इसमाईली आदि सब इसी वाममार्ग की शाखाएं हैं। अब तक भी जो हिन्दु लोग देवी और भैरूं को नहीं मानते और वैष्णव कहलाते हैं वह माँस शराब के प्रयोग को बहुत बड़ा पाप मानते हैं। मंत्रों और जन्त्रों के लिखने के लिए भी रक्त की स्याही और हड्डी की लेखनी और चमड़े के काग़ज़ से काम लिया गया। पवित्र यज्ञ और शुद्ध हवन कुंड माँस मदिरा से अपवित्र किये गए और नवीन २ एक अक्षरी, दो अक्षरी मंत्र बना कर गोमेध, अश्वमेध, अजामेध सिद्ध किये गये और मूर्खों तथा आक्षेपकों को सन्तुष्ट किया गया कि हम पशुओं को पुनः मंत्रों से जीवित कर लिया करते हैं। महाभारत युग से लेकर बुद्ध काल तक यह अन्धाधुन्ध आंधी हर कि आमद वरांमज़ीद कर्द + कभी २ धीरे और कभी २ बहुत बड़े बलपूर्वक जारी रहा। वेद ज्ञाता महात्मा ब्राह्मण भी भिन्न २ समयों में साथ के साथ विरोध करते रहे और इन बुरी कुरीतियों के हटाने में पूर्णतः यत्नवान् रहे। किन्तु "यथा राजा तथा प्रजा" सर्वथा इस खरावी की जड़ न काट

+ जो कोई आया उसे अधिक बढ़ाया। (अनुवादक)

सके। सब से पूर्व इसका खंडन महाराज कृष्ण द्वैपायन श्री वेद व्यास जी ने किया। जैसा कि वह कहते हैं कि :—

सुरामत्स्या पशोर्मासं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैव वेदेषु दृश्यते ।।
(अनुशासनपर्व २६४।६)

मद्य, मत्स्य, अन्य पशुओं का मांस और मनुष्य बलि धूर्त लोगों ने चलाई है, वेद में कदापि इस को आज्ञा नहीं है। व्यास के सुपुत्र सुखदेव मुनि जी कहते हैं कि :—

युपं कृत्वा पशु हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दनम्।
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरकंकेन गम्यते ।।

लकड़ी से बांध और पशुओं को मार कर पृथिवी को रक्त रंजित करना यदि इस प्रकार मनुष्य स्वर्ग में जाता है तो बताईये नरक में किस प्रकार जावेगा।

सत्यं यूपस्तपोऽग्निश्च प्राणाश्च समिधो मम।
अहिंसा परमो धर्म एष धर्मः सनातनः ।।

सत्यव्रत हमारा यूप है, तप हमारी अग्नि है और प्राणापान हमारी समिधा है क्योंकि अहिंसा परम धर्म है और यही सनातन से माना गया है।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधवः ।।

प्राण जैसे मनुष्य को प्रिय हैं इसी प्रकार अन्य जीवों को भी वैसे ही प्रिय हैं। वैसे ही विद्वान् लोग सब प्राणियों पर दया करते हैं।

ऐसे कई और महात्मा मेधावी बौधायन आदि सत्य धर्म का उपदेश और इन वेद विरुद्ध बातों का खंडन करते रहे किन्तु दुष्ट प्रभाव बढ़ रहा था और यहां तक बढ़ चुका था कि स्त्रियों को पशुओं के संग कुकर्म कराए जाने लग गये थे। और केवल आर्यावर्त में ही नहीं किन्तु सब देशों में यह खराबी फैल चुकी थी।

मस्नवी रूमी में रूम की एक कथा लिखी है। इस्माएली मत जहाँ मौजूद है उस की वह प्रथा है। इटली देश में भी ऐसे कार्य होते थे। बदकार (बुरा काम कराने वाली) स्त्रियों के मकान जिनके सब नमूने नीपल्ज नगर के अजायब खाना में रखे हुए हैं। यह सब कार्य यूस्पाई नगर में होते थे जो १८६७ ईस्वी में ज्वाला मुखी पर्वत के लावा के कारण बरबाद हो गया (विस्तार देखो आर्य समाचार पत्र मेरठ फाल्गुण १६४० विक्रमी)

निजामी ने सिकन्दर नामा में भी ऐसा ही लिखा है। अन्ततः जब यह वाममार्ग बहुत जोर पकड़ गया और इसने बहुत खराबी फैला दी तो विक्रम से ५०० वर्ष पूर्व कपिल वस्तु में बुद्ध ने उत्पन्न हो कर

और इस अघोर वाममार्ग से बाधित होकर दयाधर्म का प्रचार शुरू किया बुद्धमत के बनाए ग्रन्थों में अपने विचारानुसार बड़े २ दोषारोपण किये हैं और प्रबल आक्षेप किये हैं किन्तु वास्तव में कोई आक्षेप यथार्थ नहीं क्योंकि जो आक्षेप हैं वह वाममार्ग मत पर हैं और इन्हीं की वर्णित कलंकित बातों पर हैं न कि पवित्र वेद पर। वाममार्ग से ले कर बुद्धादि मत मतान्तरों ने जो जो आक्षेप पवित्र वेद पर किये हैं वह सारे के सारे निर्मूल हैं।

कुछ ही हो। बुद्ध ने वाममार्ग वा स्ववचनानुसार वैदिक मत वालों पर आक्षेप किये और इस विशेषता से किये कि लोगों ने बुद्ध बनना स्वीकार किया किन्तु मांसाहारी वैदिक बनने से घृणा करने लगे और ऐसे वेदों को भी उन्होंने मानने से इनकार कर दिया क्योंकि यदि महीधर और सायण के अर्थ ठीक हैं तो ऐसे धर्म पुस्तक के मानने से नास्तिक होना सहस्रों गुणा अच्छा है? और यदि वाममार्ग यथार्थ है जैसा कि प्रायः हिन्दुओं का विश्वास है तो धर्म निर्पेक्ष होना उस से अच्छा है। बुद्ध की शिक्षा से यद्यपि लोग ईश्वर और वेद से श्रद्धा रहित हो गये और उस वेदोक्त समझे जा रहे धर्म अर्थात् वाम-मार्ग की निन्दा होने लगी। किन्तु यथार्थ बात यह है कि क्रियात्मक रूपेण एक बात (ईश्वर की सत्ता के इनकार) के अतिरिक्त और प्रायः समस्त वैदिक सिद्धान्तों पर आचरण होने लगा अर्थात् पशु को मार कर यज्ञ करना बन्द हो गया और बलि वैश्व देव यज्ञ प्रति दिन होने लगा। अन्धे, लूले, लंगड़े, साधन रहित दरिद्र मनुष्यों और पशुओं के लिये हस्पताल और गरीब खाने तय्यार हो गये। अनाथालय जारी किये गये। (देखो मनु ३।९४) पुनर्जन्म और शुभ कर्मों पर जीवन का आधार माना गया। यद्यपि बुद्ध इतना सफल न हुआ किन्तु उसके कई सिद्धान्त सर्वथा वेदोक्त थे जिस प्रकार आजकल कुछ व्यक्ति पुराणों वा महीधर के भाष्य को पढ़ कर ईसाई हो जाते हैं। ठीक यही अवस्था बुद्ध की थी। न उसका दोष और न वेदों का। यह सारा का सारा दोष वाममार्गियों का था जिन्होंने बुद्ध की आत्मा को बाधित किया कि वह इस धर्म को छोड़ दे।

इस बुद्ध के नास्तिक मत का खंडन करने वाले सबसे पहिले भट्ट पाद कुमारिल आचार्य हुए। उनके बारे में वर्णन है कि वह जिस समय वेद शास्त्र को पढ़ चुके तो एक दिन एक मकान के नीचे से गुज़र रहे थे। महल के ऊपर एक राज कुमारी धर्म की बुरी अवस्था को सोच २ कर यह आधा श्लोक पढ़ रही थी :—

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।

कि मैं क्या करूं और कहां जाऊं। इस अन्धकार युक्त बुद्धमत के युग में कौन वैदिक धर्म की रक्षा करेगा?

तब उसके उत्तर में कुमारिल आचार्य बोले :—

मा विभैषी वरारोहे भट्टाचार्योस्ति भूतले॥

कि हे प्रिय! मत सोच कर। भट्टाचार्य पृथिवी पर विद्यमान है।

इसके पश्चात् यह सामान्यतः प्रसिद्ध है कि उन्होंने बुद्धमत का खंडन शुरू किया, किन्तु साथ ही वाम-मार्ग का भी। इनके बनाए ग्रन्थों में भी मांस शराब का समान रूप से खंडन विद्यमान है।

इसके पश्चात् २२ सौ वर्ष का समय हुआ कि शंकराचार्य हुए। उन्होंने भी मांस शराब के प्रचारक

मतों का उसी प्रकार खंडन किया जिस प्रकार कि बुद्ध और जैनियों का। और अभी तक उनके मतानुयाई कुछ वाममार्गी गोसाईयों को छोड़कर शेष सब मांस और शराब को बुरा मानते हैं।

पश्चात् ११५० ईस्वी में रामानुज हुए उन्होंने तो वाममार्ग और मांसाहार के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला वैष्वमत का प्रचार किया। उनकी जीवनी का सार समस्तरूपेण रामचन्द्र जी की जीवनी थी और उन का निश्चय था कि वह कदापि मांसाहारी न होंगे।

इनके मत में १४८८ ईस्वी में कबीर हुए। उसने भी इस्लाम मत छोड़कर वैष्णव मत को स्वीकार किया और मांसाहारादि सिद्धान्तों का खंडन शुरू किया।

कबीर जी का वचन है कि—

इन झटका उन विस्मल कीना दया दोहां से भागी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो आग दुहां घर लागी॥

जीव बध धर्म कर थापियो अधर्म कहां कहो भाई।
आपस को मुनिवर कर थापियो का को कहत क़साई॥

कबीरा तेरी झोंपड़ी गलकटियन के पास।
करेंगे सो भरेंगे तू क्यों भयो उदास॥

इन्हीं दिनों अथवा उससे कुछ पूर्व एक साधु हो गये। उन्होंने भी कई अच्छी बातों का प्रचार किया जिनका नाम दादू था उनका वचन है कि—

पाहन परमेश्वर क्या कराए आत्माघात।
सत्य कहुं संशय नहीं सो प्राणी दोज़ख जात॥

इससे कुछ पूर्व एक महात्मा जंभा जी देहली के आसपास हुए उन्होंने इसलामी विद्वानों से शास्त्रार्थ करके बहुत कुछ उन्हें अनुकूल बनाया और सैकड़ों व्यक्तियों को इस्लाम मत से घृणा दिलाकर वैदिक धर्म का अनुयाई बनाया और ऐसा ही उपदेश चेतन ने किया। किन्तु वाममार्गी संसार से सर्वथा समाप्त न हुए वह पूर्ववत् छिप-छिपकर अपना काम जितना हो सका करते रहे और बदकारी में पग धरते रहे।

मुसलमानी अत्याचार के युग में एक और महात्मा ऊधो जी हो गए हैं। उन्होंने भी सहस्रों मनुष्यों को मूर्ति पूजा, मांसाहार और जीव ब्रह्म की एकता से हटा कर ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया किन्तु इस्लाम मत का खंडन भी साथ ही करते थे।

इसी कारण से बादशाह की आज्ञा से उनका वध कराया गया। बाबर के समय में बाबा नानक जी भी जहाँ तक हमें ज्ञान है—मांसाहार का खंडन किया और मांसाहारियों को इसके छोड़ने का उपदेश दिया जैसाकि—

भंग मछली, सुरापान जो जो प्राणी खाए।
धर्म नेम जितने किये, सभी रसातल जाए॥

जे रत लगे कपड़े, जामा होए पलीत।
जो रत खावे मानसा, तन निर्मल कहां चीत॥

असंख्य मूर्ख अन्ध घोर,
असंख्य चोर हराम खोर।
असंख्य अमर को जाएं चोर,
असंख्य गल बढ़ हत्या कमाएं।
असंख्य पापी पाप कर जाएं,
असंख्य म्लेच्छ मलबिख खाएं :
खुश खाना है खिचड़ी जामें पड़े टुक लोन
मांस पराया खायके गला कटावे कौन।
मांस खानड़े कर नवाज,
छुरी व गाएं तन गल ताग।
तन घर ब्राह्मण पूरे नाद,
उनां नही आधे आधे स्वाद।
कूड़ी रास कूड़ा व्योपार,
कूड़ बोलें करें आधार।
शर्म धर्म का डेरा दूर
नानक कूड़ रहया भरपूर।
मत्थे टीका तेड़ धोती लगई,
हथ छुरी जगत् क़साई।

५०० वर्ष का समय हुआ कि सायणाचार्य और उसके निकट समय में ही महीधर हुए। यह दोनों वाममार्गी थे। वह राजाओं को वश में करके वेदों के द्वारा वाममार्ग के प्रचार में कटिबद्ध हो गये और उन्हीं दिनों में एक गोसाईं शवर हुए। उन्होंने भी वाममार्गी होने के कारण मांस शराब का खूब प्रचार किया। पहिले ने ऋग्वेद पर भाष्य बनाया और दूसरे ने यजुर्वेद और तीसरे ने मीमांसा पर भाष्य किया। हम अधिक विस्तार नहीं करना चाहते कि उनके ग्रन्थों से प्रमाण लिखें। ग्रन्थों के नाम से ही आप समझ जावेंगे। महीधर ने मंत्र महोदधि बनाया। अतः आप जान सकते हैं कि उन्होंने इन भाष्यों में सत्यधर्म का किस प्रकार सत्यानाश करने का यत्न किया। बहुत कुछ वाममार्ग की चर्चा इनके भाष्यों में से भी हुई और लोग सद्धर्म से पदच्युत हुए और यह ज्ञान शून्य आंधी दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। इन्हीं भाष्यों की कृपा है कि पं० जगन्नाथ शास्त्री जैसे वैश्याओं के अन्धकूप में डूबकर मुसलमान हो गए।

स्वामी दयानन्द जी महाराज और मांस

पंडित धर्मनिरपेक्ष नास्तिक, मुहम्मदी वा ईसाई हो जाते और वदिकधर्म को लोग घृणा की दृष्टि से देखकर तटस्थ हो जाते कि एकाएक महात्मा जीव ने इस संसार में पवित्र तिथि १८८१ संवत् विक्रमी गुजरात में जन्म लिया और पूर्ण युवावस्था में सत्यशास्त्रों के पठन-पाठन और वेदों के अभ्यास से निश्चय कर लिया कि इस समय की समस्त अवस्था सर्वथा वेदों के विरुद्ध है। जैसा कि काशी आदि में सैकड़ों पंडितों के साथ शास्त्रार्थ कर सबके पोल खोल दिये। किसी कवि के कथनानुसार :—

किया काशी आदि में शास्त्रार्थ भारी।
हुए शान्त सब पोप दुष्कर्मचारी॥
दया और आनन्द है मूल जिनकी।
घोर धर्म जिज्ञासु अब याद तिनकी॥

उन्होंने १८७५ ई० के शुरू में बम्बई नगरी में सर्वतः प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की और कई व्याख्यान मद्य मांसादि के खंडन में दिये और इसी प्रकार मूर्ति पूजादि वेद विरुद्ध विषयों पर भी प्रवचन हुए। इसके पश्चात् जौलाई १८७५ ईस्वो में पूना नगर में व्याख्यान दिये जो उसी समय मरहठी भाषा में प्रकाशित हो गए।

८ जौलाई १८७५ ईस्वी—"अहिंसा परमोधर्मः। धृतिः क्षमा इत्यादि, धर्म और अधर्म अनेक हैं। परन्तु उनमें विशेष रीति से यह धर्म और यह अधर्म है—उसको हम प्रथम कहते हैं—

प्रथम अहिंसा का लक्षण :—

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(योगशास्त्र पाद २ सूत्र ३०)

अहिंसा इसका अर्थ सामान्यतः यह है कि पशुओं को न मारना किन्तु व्यास जी ने इसका विशेष अर्थ इससे बढ़कर किया है कि :—

सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः अहिंसाज्ञेया।

अर्थात् सब प्रकार और सदा सब प्राणियों से वैर विरोध का त्याग अहिंसा है। (पृ० १)

पुनः एक और व्याख्यान २० जौलाई १८७५ को संस्कार पर दिया। उसमें यज्ञ की व्याख्या करते हुए कहा कि "यज्ञ में मांस नवीन पंडितों की रचना है। होम देवताओं का हो और मांस पशुओं का डाला जाए और यह व्यवस्था परमेश्वर की हो, हमें विश्वास नहीं क्योंकि परमेश्वर की व्यवस्था में ऐसा अन्याय नहीं हो सकता। यह तो हमने पशुओं के न मारने के संबंध में कहा किन्तु क्या किसी होम में पशु मारे भी जाते हैं? इस शंका का उत्तर देते हैं। होम दो प्रकार का है। एक राज धर्म सम्बन्धी, दूसरा सामाजिक। अब तक हमने सामाजिक होम का निरूपण किया और शेष रहा राज धर्म सम्बन्धी होम, उसकी व्यवस्था सारी की सारी पृथक् है। उसमें पशुओं के मारने की क्या प्रतिष्ठा है? उसमें मनुष्य भी मारे जाते हैं। अर्थात् युद्ध संबंधी सहस्रों मनुष्यों के प्राण लेने राज धर्म में उचित हैं। जो जंगली दुष्ट पशु खेतों को बरबाद करते हैं उनका मारना ठीक है और जंगली सिंह व्याघ्रादि की हत्या भी यथार्थ है। किन्तु होम सम्बन्धी मांसाहार जो कहते हैं वह सर्वथा अयोग्य है किसी प्राणधारी को कष्ट देना कैसे हो सकता है? किसी जीव के प्राण लेने से यह धर्म ईश्वरीय नहीं हो सकता।"

(पृ० ६)

स्वामी जी ने जो उपदेश बम्बई में १८७५ ईस्वी में दिए और जिस सिद्धान्त पर बम्बई आर्य समाज स्थापित हुआ, उसी के अनुसार लीलाधर हरिदास ने एक पुस्तक सत्यासत्य विचार १८७६ ईस्वी में प्रकाशित कराई। उसके पृष्ठ २८ से ३४ तक मद्यमांस आदि का खंडन विद्यमान है। पुनः स्वामी जी

ने भाद्रपद १९३३ तदनुसार सितम्बर १८७६ ईस्वी में भूमिका लिखनी आरंभ की उसके पृष्ठ १७१, १७२ पर लिखा है कि :—

"सब भूतों (प्राणियों) से सदा सर्वदा सर्वप्रकारेण वैर न करना यह अहिंसा है जो उपासक के लिए आवश्यक है—संक्षेपतः।"

पुनः पृष्ठ २७६ से २७८ तक मद्य मांसादि का खंडन करते हुए लिखते हैं कि :—

"इत्यादि अनेक अनर्थ कथा तन्त्र ग्रन्थों में लिखी हैं वह सब वेदादि शास्त्र, युक्ति प्रमाणों से विरुद्ध होने के कारण श्रेष्ठ पुरुषों के ग्रहण करने के योग्य नहीं क्योंकि मद्यादि सेवन से मुक्ति कभी नहीं हो सकती परन्तु ज्ञान का नाश और दुःख अर्थात् नरक की प्राप्ति दीर्घ काल तक होती है।"

संवत् १९३४ तदनुसार १८७७ ईस्वी में स्वामी जी ने आर्योद्देश्य रत्नमाला लिखी और अमृतसर में प्रकाशित कराई। उसके अंक ४१ में लिखा है कि :—

"(आर्य) जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यवादी, गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहता हो वह आर्य है।"

अंक ५७ में परोपकारी की व्याख्या की है कि :—

"अपनी सामर्थ्य से जो तन मन धन से प्रयत्न करना है वह परोपकार कहलाता है।"

अंक ४२ :—

"दस्यु अनार्य जो अनाड़ी, आर्यों के स्वभाव और निवास से पृथक्, डाकू, चोर, हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य हैं वह दस्यु कहाते हैं।"

पुनः स्वामी जी ने लाहौर में जो १८७७ ईस्वी में व्याख्यान दिए हैं उनमें से एक व्याख्यान में कहा कि मैं जो ऐसा दृढ़ और हृष्ट पुष्ट हूं मांस खाने और हाड चबाने से नहीं हुआ किन्तु अन्नादि के खाने और ब्रह्मचर्य से हुआ।"

और भी कई बार उन्होंने मांस का खंडन किया।

पुनः स्वामी जी ने गोकरुणानिधि सम्वत् १९२७ तदनुसार १८८० ईस्वी में लिखी और यही ग्रन्थ उनके जीवन में दूसरी बार २० अप्रैल १८८३ ईस्वो तदनुसार विसाख १९३९ विक्रमी में छपा। उसके पृष्ठ ६ से १४ तक प्रत्येक प्रकार के मांस शराब का बड़ी प्रबल युक्तियों से खंडन किया है।

पुनः स्वामी जी ने भाद्रपद शुक्ल संवत् १९३९ तदनुसार १३ सितम्बर १८८२ ईस्वी को सत्यार्थ, प्रकाश समाप्त किया। उसमें निम्न स्थलों में मांस का खंडन लिखा है।

पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं कि—

"क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं। जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वह मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर प्राणीमात्र की हिंसा करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।" (सत्यार्थप्रकाश की भूमिका)

पृष्ठ २७ पर लिखा है कि :—

"माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य,

दुर्गन्ध, रूखे, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़कर जो शान्त, आरोग्य, बलबुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्न, पान (पेय) आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रज वीर्य सब दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुण युक्त हो।" (समुल्लास ६)

पृष्ठ ३४, ३५ में लिखा है कि :—

"जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजनाछादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्यमाँसादि के सेवन से पृथक् रहें।" (समुल्लास २)

पृष्ठ ५०, ५१ में ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी का वर्णन करते हुए विशेष रूप से मद्य, मांस, प्राणीहिंसा, द्यूतादि का निषेध किया है। (समुल्लास २)

पृष्ठ १४४-१४६ तक राजधर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

"काम से उत्पन्न विषयों में से सब से बड़े यह हैं, नशाबाजी, जुआबाजी, दुराचार, शिकार खेलना, यह सारे के सारे एक दूसरे से बढ़ कर बुरे हैं। दुष्ट स्वभाव में फंस जाने से मर जाना अच्छा है। (संक्षेप) (समुल्लास ६)

पृष्ठ २६४ पर लिखा है कि :—

जो, लोग मांस भक्षण और मद्य पान करते हैं, उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित हो जाते हैं। अतः इनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जाए यह तो ठीक है।" (सम्मुल्लास १०)

"इतना अवश्य चाहिये कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें।" (समुल्लास १० पृ० २६५)

"हां, मुसलमान ईसाई आदि मद्यमांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है। परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता।" (समुल्लास १० पृष्ठ २६६)

"और मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिन का शरीर मांस के परमाणुओं से पूरित है इनके हाथ का न खावें। (समु० १० पृ० २६७)

गाय, बकरी, हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गधी आदि से भी बड़े उपकार होते हैं इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानियेगा।" (समु० १० पृ० २६८)

(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जाएं तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जाएं कि सब गाए आदि पशुओंको मार कर खा जाएं। तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाए।

(उत्तर) यह राज पुरुषों का काम है कि हानिकारक पशु वा मनुष्य हों तो उन को दंड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर देवें।

(प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें ?

(उत्तर) चाहे फेंक दें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिलावें वा जला दें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा, चोरी विश्वासघात, छल, कपटादि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाशक, बुद्धि, बल, पराक्रम वृद्धि और आयु हो जाए, उन तंडुलादि गन्दुम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मीठा आदि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाकमेल करके यथोचित समय पर सदाहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन उनका सर्वथा त्याग करे और जो-जो जिस-जिस के लिये विहित है उन-उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।" (समु० १० पृ० २६८)

"जैसे कि मद्य सेवन, बालावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। समु० ११ पृ० २७६)

पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्य का सेवन गुप्त-गुप्त करने लगे।"

(समु० ११ पृ० २८२)

"अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं ऐसे पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं यह कहना छोकरापन है क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं हो सकता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं।" (समु० ११ पृ० २८६-२८७)

"पशु मारना वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा।" (समु० १२ पृ० ३६६)

और जो मांस खाना है यह भी इन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है। अतः उनको राक्षस× कहना उचित है परन्तु वेदों में कहीं मांस खाना नहीं लिखा।

मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों को जाने, सुने बिना मनमानी निन्दा की है—निस्संदेह लगेगा। सत्य तो यह है कि जिन्होंने वेदों से द्रोह किया और करेंगे वह अवश्य अविद्या रूपी अंधकार में पड़ के सुख के स्थान पर दारुण दुःख जितना पावे, उतना ही न्यून है। अतः मनुष्यमात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है। जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोल कल्पित करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् स्वरुचि के अनुसार मद्य मांस खाने और पर स्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कार्यों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलंक लगाया। इन्हीं बातों को देखकर चारवाक, बौध तथा जैनी लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् वेद विरुद्ध, अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया।

जो चार वाक आदि वेदों का मूल अर्थ विचारते तो मिथ्या टीकाओं को देखकर सत्य वेदोक्त

× राक्षस शब्द संस्कृत का है। वैदिक में इसके अर्थ निम्न हैं।

अमर्षणमननुबन्धं कोप प्रहारं क्रूरमा..................

मांस प्रयतं स्वयं नायासं बहुलमीर्षतं राक्षसं विद्यात्॥

सहनशक्ति से रहित, हठी, क्रोध से मारने वाला, कठोर भोजन में रुचि रखने वाला, मांस प्रेमी, सोने के लिये श्रमशील, ईर्षालु को राक्षस कहते हैं।

मत से क्यों हाथ धो बैठते ? बिचारे क्या करें ? विनाश काले विपरीतबुद्धिः ।" जब नष्ट-भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की विपरीत बुद्धि हो जाती है ।" (समुल्लास १२ पृष्ठ ४०८)

ईसाईयों और यहूदियों के खुदा के सम्बन्ध में मांस सेवन का दोष लगाया है और मांस सेवन पर आपत्ति भी उठाई है। (देखो समु० १३ धारा ६, १५ पृ० २७६, २८१)

पृष्ठ ५३१ में मुसलमानों पर मांस सेवन के सम्बन्ध में आक्षेप किये हैं। (देखो समु० १४)

पृष्ठ ५७६ के नम्बर २४ में स्वमन्तव्य के वर्णन में तीर्थ, यमादि का वर्णन है और यम की व्याख्या (देखो पृष्ठ ४७ समुल्लास ३)

नम्बर २८—यज्ञ की व्याख्या जिसमें सब जीवों को सुख पहुंचाना है। उसको उत्तम समझता हूं।

और ऐसा ही नम्बर १३, १४ में भी इसी की ओर इशारा है। और अन्त में दूसरे प्रकरण का प्रमाण दिया है। (देखो पृष्ठ ५८१ और दूसरे प्रकरण में देखो मांस का खंडन)

(पृ० ३४ पर) प्रसिद्ध अन्वेषक पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति अपने कोष में लिखते हैं कि :—

बामाचारः—वामः वेदादिविरुद्धाचारः ।
तंत्रोक्तमद्यमांसादि सेवनरूपं आचरणं ॥

(शव्दस्तोममहानिधि द्वितीय वार १८७ ईस्वी कलकत्ता पृष्ठ १०१६)

यह मत वाममार्ग वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध पद्धति को कहते हैं। यह सर्वथा तन्त्रों के अनुसार है। इस मत में मद्य मांसादि का सेवन करना पड़ता है।

वेद से मांस खंडन

(१) **य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रवि ।**
गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितोनाशयामसि ॥ अथर्व ८।६।१५

जो कच्चे मांस को खाते हैं और जो मनुष्य के निमित्त मांस को अर्थात् पका कर खाते हैं औ जो अंडों को खाते हैं, ऐसे दुष्टों का मैं नाश करता हूं।

(२) **यथामांसं यथा सुरा यथाक्षापरिदेवने ।**
यथा पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
एवाते अघ्न्येमनोधिवत्से निहन्यताम् ॥ अथ० ६।१०।१

जैसे मांस, जैसे मद्य, जैसे द्यूत, (प्राणी और अप्राणी से दाओ लगाना) और जैसे व्यभिचार से मन हनन होता है। ऐसे ही हे स्त्री ! तेरा मन भी पर पुरुष में हनन होता है।

इस वेदमंत्र की व्याख्या मनुस्मृति में की गई है :—

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्ट तमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ मनु० ७।५०

नशा पीना, द्यूत क्रीडा, दुराचार, शिकार खेलना यह चारों काम से उत्पन्न होने वाले दोष एक दूसरे के मुकाबला में बहुत दुःखदायक हैं।

पुनः मनु ७।५३ में स्पष्ट बताया है कि दुष्ट व्यसनों में फंसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष हैं, जितना वह अधिक जियेगा, उतना अधिक पाप करेगा।

(३) **ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिनि हरेति।**
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते उतो तेषामभिगूर्तिन इन्वतु ॥
ऋ० १।१६२।१२

भावार्थ :—जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना, पकाना और उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़कर भोजन करते हैं वह उद्यमी होते हैं।

(४) **यन्नीक्षणं मां सपचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।**
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूना परिभूषन्त्यश्वम् ॥ ऋ० १।१६२।१३।

भावार्थ :—जो मनुष्य मांसादि पकाने के दोष से रहित, बरतनों के धरे जलादि का प्रयोग करने अग्नि को जलाने और उसको ढकनों से ढांपने को जानते हैं, वह पाक विद्या में कुशल होते हैं।

(५) यजु २५।३६ पर स्वामी जी लिखते हैं कि—"यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावे तो उनको यथापराध अवश्य दंड देना चाहिये।"

(६) इसी प्रकार यजु० २५।३७ पर भावार्थ में लिखते हैं कि :—
"हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़े आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं। वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि विघ्नों से पृथक् रखो।

(७) **प्रजां मे पाहि शंस्य पशून्मे पाहि।** यजु ३।३७

हे जगदीश्वर! आप मेरी प्रजा और पशुओं की रक्षा कीजिये।

(८) **मित्रस्याहं चक्षुषासर्वाणिभूतानि समीक्षे ॥** यजु ३६।

मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को भले प्रकार देखो।

(९) **शन्नोअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥** यजु ३६।८

हे प्रभो! आपकी कृपा से दोपाए और चौपाए सबका कल्याण हो।

(१०) यजु १३।५१ का भावार्थ :—
"मनुष्यों को उचित है कि बकरी और मोर आदि श्रेष्ठ पशु-पक्षियों को न मारें और उनकी रक्षा करके उपकार के लिये संयुक्त करें।

(११) यजु १३।५० का भावार्थ :—
हे राजन्! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुखों के लिये होते हैं और जो ऊंट भार उठाते हैं। मनुष्यों को सुख देते हैं। उनको जो दुष्ट जन मारना चाहें। उनको संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दंड देना चाहिये।

(१२) यजु १३।४९ का भावार्थ :—

हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि कार्य होते हैं और जिन गो आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं और जिनके दूधादि से सब प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दंड देवें।"

(१३) यजु १३।४८ का भावार्थ :—

मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को कभी न मारें। जिनके मारने से जगत् की हानि और न मारने से सबका उपकार होता है, उनका सदैव पालन-पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों, उनको मारें।

(१४) यजुर्वेद १३।४७ का भावार्थ :—

कोई भी मनुष्य सबके उपकार करने वाले पशुओं को कभी न मारें, किन्तु इनकी अच्छे प्रकार रक्षा कर, और इनसे उपकार लेकर सब मनुष्यों को आनन्द देवें। जिन जंगली पशुओं से गांव के पशु, खेती और मनुष्यों को हानि हो, उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें।

(१५) ऐसा ही अथर्ववेद कांड ५ वर्ग २१ मंत्र २ तथा कांड २ वर्ग ३५ मंत्र ५ और कांड १२ वर्ग २ मंत्र १५ में स्पष्ट रूप से मोर, बकरा, कोंच, भेड़, घोड़े, गाय, बकरी आदि दुःख न देने वाले पशुओं के मारने का कठोरता से निषेध किया गया है। और कांड ४ वर्ग ३६ मंत्र ७-८ और कांड ५ वर्ग २९ मंत्र १०, १२ में मांस खाने वालों को राक्षस, पिशाच और दुष्ट घोषित किया गया है।

इसी प्रकार कणाद मुनि वैशेषिक शास्त्र में लिखते हैं कि :—

तद् दुष्ट भोजने न विद्यते ॥ वैशे० ६।१।६

वह आत्मिक ज्ञान दुष्ट भोजन में नहीं है।

दुष्टं हिंसायाम् ॥ वैशे० ६।१।७

दुष्ट भोजन वह है जिसमें हिंसा हो।

तस्य समाभिव्याहरतो दोषः ॥ वैशे० ६।१।८

क्योंकि उसके खाने और खाने वाले के संग से दोष लगता है।

तददुष्टे न विद्यते ॥ वै० ६।१।९

किन्तु हिंसा से रहित भोजन में वह दोष नहीं है।

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥ वै० ६।१।१०

और हिंसा रहित भोजन से ही शुभकर्मों में प्रवृत्ति होती है।

गौतम मुनि जी ने लिखा है—पृष्ठ ३५ :—

तत्र सामान्यानिधर्मे श्रद्धा अहिंसाभूतहितत्वं सत्य वचनमस्तेयम् ॥

इसी के अनुसार मनु १०।६३ में लिखा है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, यह साधारण धर्म चारों वर्णों के लिये है।

महामुनि पतंजलि जी की सम्मति :—

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमा ।। योग २।३०

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच यम हैं ।

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।

उत्तेर च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धि परतयैवतत्प्रति पादनाय प्रतिपादयन्ति ।

इस पर व्यास जी ने भाष्य किया है कि सब प्रकार से सब काल में सर्व प्राणियों के द्रोह के त्याग को अहिंसा कहते हैं । यह अहिंसा शेष सत्यादि यमों का मूल है । इसके सिद्ध होने से वह सब सिद्ध होते हैं और वह सब इसी की पुष्टि करने के लिये उपदेश किये गये हैं ।

इस व्यासभाष्य पर भोज देवराज अपनी वृत्ति में कहते हैं कि :—

तत्र प्राण वियोग प्रयोजन व्यापारो हिंसा ।

साचसर्वानर्थहेतुस्तदभावोऽहिंसा ।।

किसी प्राणी के प्राण का वियोग करना इसका नाम अहिंसा है । वह सब अनर्थों का कारण है । उसके न करने को अहिंसा कहते हैं । हिंसा सब प्रकार से त्यागने योग्य है ।

समाधि प्राप्त करने में प्रथम साधन यम है और यम में प्रथम उपदेश अहिंसा है । (देखिये इससे स्पष्ट रूप से प्रगट है कि मांसाहार ईश्वर प्राप्ति की जड़ काटतो है)

जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः

सार्वभौमा महाव्रतम् ।। योग २।३१

जाति, देश, काल और समय की अपेक्षा से अहिंसा चार प्रकार की होती है अतः सब अवस्थाओं में, सर्व देशों में प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था में अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिये ।

वितर्का हिंसादयःकृतः कारितानुमोदिता ।

लोभ क्रोध मोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा ।।

दुःखाज्ञानानन्त फला इति प्रतिपक्षभावनम् ।। योग २।३४

मांस खाने के लिये हिंसा करना कराना व अनुमति देना । लोभ, मोह, क्रोध के भय से हिंसा के बहुत भेद हैं । वह सब ही दुःख अज्ञानादि अनन्त पाप के देने वाले हैं । अर्थात् इन सब प्रकार की हिंसा करने से कर्ता को अनन्त दुःख और अज्ञानरूपी फल प्राप्त होते हैं ।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । योग २।३५

जब अहिंसा प्राणीमात्र को किसी प्रकार का दुःख न देना) यह धर्म निश्चय हो जाता है । तब उस पुरुष के मन से वैर भाव छूट जाता है ।

विपक्षियों की प्रतिपत्तियों का समाधान

अपूपवान्मांसवांश्चरेह सीदतु ।
लोककृत. पथिकृतोयजामहे येदेवान्तं हुतभागा इह स्था ॥
अथ १८ कांड, वर्ग ४ मन्त्र २

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणाभिते ।
तेते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तोघृतश्चुतः ॥
अथ० कांड १८ वर्ग ४ मन्त्र ४२

मंत्र २० के कठिन शब्दों के अर्थ :—

(अपूपवान्) तिलादि (मांसवान्) मृत शरीर (देखो उणादि कोष ३।६४)

(चरु) हवन की सामग्री (सीदतु) इसके अर्थ नष्ट करने के हैं (देखो धातु पाठ पृष्ठ १२ पंक्ति २४)

यह दोनों मंत्र एक ही कंडिका के हैं और यह सब सोलहवें संस्कार अर्थात् मृतक शरीर के जलाने के सम्बन्ध में हैं। इस कंडिका में २९ मंत्र हैं।

हम पाठकों से इस सारी कंडिका देखने की प्रार्थना करते हैं और कुछ मंत्रों की प्रतीकें अपने अर्थ के समर्थन में उपस्थित करते हैं।

इस वर्ग का प्रथम मंत्र जीव को सम्बोधन करके पढ़ा जाता है, जिस जीव ने शरीर छोड़ दिया है। जिसके अर्थ यह हैं कि परमेश्वर जगत् स्रष्टा के भंडार में पितरों के मार्ग से गमन कर।

दूसरे मंत्र में देवयान और स्वर्गलोक शब्द मौजूद हैं जिसका अर्थ यह है कि तू उन दो मार्गों से जा। जिनसे भजन करने वाले स्वर्ग की अवस्था प्राप्त करते हैं। दो मार्ग अर्थात् पितृयान और देवयान प्रसिद्ध हैं (विस्तार देखो वेदभाष्य भूमिका पृ० २०५)

तीसरे मंत्र में भी स्वर्ग यात्रा (सुख प्राप्ति) आदित्य आदि शब्द विद्यमान हैं। दसवें मंत्र में भी वर्णन है कि हे अग्ने! आप इस जीव को स्वर्गलोक में सैंकड़ों सूक्ष्म शक्तियों से विद्युद् रश्मियों द्वारा ले आओ जहां मुक्त जीव आनन्द भोगते हैं। प्राचीन ऋषि और आजकल के उत्तम दार्शनिक विद्वान् सूर्य की किरणों द्वारा जीव की गति मानते हैं। (पुनर्जन्म के विषय में दी आफ़ ट्रुथ का अध्ययन करो)

मंत्र नं० २० का अनुवाद—

तिल और हवन की सामग्री के साथ मृतक शरीर को दो।

इसमें मांस खाने अथवा जीव हत्या का कदापि वर्णन नहीं।

मंत्र नं० ४३ का अनुवाद :—

जो घी चावल, मृत शरीर का मांस तुझ में डालता हूं, वह सब प्रशस्थ अन्न माधुर्य और जल के झरने वाले हूं।

यह सारी कंडिका मृतक संस्कार के बारे में है। अतः इससे मांस भक्षण सिद्ध करना बड़ी भारी

भूल है। यह तो ऐसी ही बात है जैसे किसी ने भूखे से पूछा कि चांद और सूर्य क्या हैं ? उत्तर दिया कि दो रोटियां। ऐसे ही जहां मांस का शब्द देखा। न लेख से प्रयोजन न उसके अभिप्राय की चिन्ता। माँसाहार का ध्यान आ गया।

एतदुवास्वादीयो यदाधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेवनाश्नीयात्

अथर्व कांड ९ वर्ग ६ कंडिका ३ मंत्र ३९

(कठिन शब्दों के अर्थ) (स्वादीयः) स्वादयुक्त (अधिगवम्) अधि=ऊपर (देखो वेदांग प्रकाश पृ० ३) जैसे अधिराज=राजाओं के ऊपर इत्यादि। गवम् गो से बना है। अज प्रत्यय लगता है। गो के अर्थ विष्ठा या गोबर के हैं (देखो धातु पाठ पृष्ठ २४ पंक्ति १८) (क्षीर) दूध, मांस के अर्थ गोश्त (नाश्नीयात्) नहीं खाना चाहिये। अश् धातु खाने के अर्थ में है। जैसे फलाशी सभा और अन्न-प्राशन संस्कारादि।

(शब्दार्थ) वह दूध जिसमें गोबर अथवा मूत्र × ऊपर से मिल गया हो वह यदि स्वादु भी हो और मांस, उनको कभी नहीं खाना चाहिये।

कुछ वैदिक अर्थ पद्धति को न जानने वाले लोग किसी के बहकावे में आकर आक्षेप करते हैं कि इस मंत्र में "अतिथेः पूर्वम्" अर्थात् अतिथि से पूर्व की अनुवृत्ति आती है। क्योंकि यह शब्द ऊपर के मंत्र में आये हैं, किन्तु यह आक्षेप कई कारणों से ठीक नहीं।

प्रथम कारण:—वेद अष्टाध्यायी के सूत्र नहीं हैं कि वह स्वयं अपना अर्थ न दे सकें कि जब तक पूर्व सूत्रों के शब्दों की अनुवृत्ति न लाई जाए। और वेद के किसी मंत्र में अकारण अनुवृत्ति लाने की पद्धति नहीं है।

द्वितीय कारण :—वेद में अनुवृत्ति लाने का क्रम नहीं है क्योंकि इनमें कर्ता कर्मादि विद्यमान रहते हैं।

तृतीय कारण :—इस कंडिका का प्रत्येक मंत्र स्वतः पूर्ण है।

चतुर्थ कारण :—वेद में परस्पर विरोध नहीं है। जबकि इससे परस्पर विरोध आता है। (देखो ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६२ मंत्र १२ स्वामी जी का भाष्य)

अब हम बताते हैं कि इस कंडिका में कैसी उत्तम रीति से उपदेश का क्रम है। इस कंडिका में ३१ से ३९ तक ९ मंत्र हैं। ३१ से ३६ तक के मंत्रों के अर्थों का संक्षेप यह है कि अतिथि से पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये। ३७ में अतिथि के गुण वर्णित हैं कि वह श्रोत्रिय वेदवित् होना चाहिये। मंत्र ३१ से ३६ तक अतिथेः पूर्वं शब्द आता है और इन सबमें विद्यमान है। वेद के पढ़ने वाले जानते हैं कि वेद मंत्रों में जब अन्त में दूसरे मंत्रों की प्रतीकें आने लगती हैं तो एक शून्य का चिह्न लगा के इस मंत्र को लिख देते हैं। पहिला मंत्र पूर्ण लिखते हैं और जब विषय समाप्त होता है तो अन्तिम मंत्र भी पूरा लिखते हैं। वही बात यहां पर है। पाठक अथर्ववेद को निकाल कर देख लें। मंत्र ३७ में अतिथि का लक्षण है। वहां वह शब्द नहीं और ३८ में यजमान के लिये उत्साह बढ़ाने वाली आज्ञा है। और ३९ में दोनों के लिये आज्ञा है। अतः इसमें न अतिथि का शब्द है और न यजमान का तथा कोई समय की

× अधिगवम् के सीधे अर्थ हैं कि जो दूध गाय (बछड़ी, बछड़े) के अधिकार का है। उसे कदापि ग्रहण न करे। अर्थात् बछड़ा बछड़ी की आवश्यकता से अधिक जो दूध हो वही प्राप्त करे। (अनुवादक)

नियुक्ति भी नहीं है। इसलिये यह सामान्य सदैव को आज्ञा है। जो लोग इस ३९ वें मंत्र का और प्रकार का अर्थ करें वह अपना प्रमाण उपस्थित करें वा किसी प्राचीन ऋषि का प्रमाण दें। जिससे हम तुरन्त समझ लें कि यहां उनके मनमाने शब्द विद्यमान नहीं।

सयएवं विद्वान् मांसमुपसिच्योप हरति।
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेननावरुन्धे ॥

अथव ९।६ (३)। ८

वह विद्वान् जो और किसी अच्छी वस्तु को ठीक बनाकर भोजन देता है। द्वादशाह यज्ञ से जितना फल होता है उतना उसको फल मिलता है जो ऐसा करता है।

ज्ञात हो कि इससे ऊपर तीन मंत्र और हैं। एक में घी या मक्खन देने का वर्णन और दूसरे में दूध देने की और तीसरे में मधु देने की तथा पांचवें में पानी देने की आज्ञा है पश्चात् यह वर्ग समाप्त हो गया। क्रम से रहित होने का दोष वैदिक मंत्रों में नहीं है। इस आधार पर इन युक्तियों से सिद्ध है कि यहां सामान्यतः मांस शब्द के अर्थ किसी हृदयग्राही वस्तु के हैं, मांस के नहीं।

प्रथम कारण :—निरुक्त जो वेदों का प्रामाणिक कोष है उसमें मांस शब्द के यह अर्थ लिखे हैं—

मांसं मानवं मानसंवा—मनोऽस्मिन्ससीदतीतिवा ॥ निरुक्त अ० ४

मांसमन् धातु से बनता है। उसका अर्थ मान है, मन सम्बन्धी या जिसमें मन लगता है। यह सब मांस शब्द के अर्थ हैं।

द्वितीय कारण :—इस वर्ग में घी, दूध, मधु, जल सब बहने वाली वस्तुएं हैं। अतः यह भी कोई ऐसी बहने वाली वस्तु है। शरीर खंड नहीं।

तृतीय कारण :—इसमें पकाने, काटने और रक्त से पृथक् करने का वर्णन नहीं। इस आधार पर यह मांस नहीं कोई और वस्तु है।

चतुर्थ कारण :—इसमें यह नहीं बताया कि किस पशु का मांस हो, यदि यह विशेषण होता, तो अवश्य आपका प्रयोजन सिद्ध था किन्तु वह तो सर्वथा नहीं। आप सिद्ध नहीं कर सकते हैं कि कुत्ते का मांस, मनुष्य का मांस अथवा उल्लू का मांस। केवल अकेले शब्द के वही यौगिक अर्थ हैं जो निरुक्तकार यास्कमुनि ने किये हैं न कि कुछ और। जबकि इसके ऊपर प्रथम वर्ग में ही लिखा है कि मांस कदापि न खावे।

पंचम कारण :—यह कोई वस्तु धोकर वा शुद्ध करके प्रोसने की है, पकाने के योग्य वस्तु नहीं। ऐसी घिनौनी वस्तु भी नहीं जैसे कि मांस। इस कंडिका का अभिप्रायः यह है कि घी, दूध, शहद और अन्य कोई अच्छी वस्तु जैसे अर्क, सोम, शरबत, ईखरस जो उस समय समुचित हों, देवें। पश्चात् पानी देवें। अतः किसी प्रकार इस वर्ग में मांस खाने का वर्णन नहीं।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि यह सारे पांचों मंत्र यदि साधारण अतिथि के सम्बन्ध में हैं तब तो हमने बता दिया कि निरुक्त के अनुसार वहां मांस शब्द के अर्थ किसी मन पसन्द वस्तु के हैं। यदि हवन का विषय है जैसा कि कई विद्वान् पंडितों का विचार है तो मांस शब्द के अर्थ जटामासी अर्थात् बाल छड़ के हैं जो हवन की सामग्री में से एक वस्तु है (देखो रिचर्डसन साहिब की संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी) और ऐसा ही शब्दस्तोम महानिधि में भी लिखा है।

इसके अतिरिक्त हवन में मांस न पड़ने का एक और भी पुष्ट प्रमाण है। सूत्र में लिखा है :—

हौमेयं मांसवर्जम् ।। आश्व १।९।९

अर्थात् हवन की सामग्री में मांस कदापि नहीं है। और मनु० ११।९५ में भी लिखा है कि मद्य-मांस पिशाचों और राक्षसों का भोजन है, वह ब्राह्मणों को न खाना चाहिये। क्योंकि वह देवताओं और मुनियों के अन्न, फल, फूल, कन्द, मूल के खाने वाले हैं, जो हवन के योग्य वस्तुएं हैं।

अथर्ववेद में परमेश्वर ने खानपान के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से आज्ञा दी है कि :—

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ।

अथर्व १२।५।१०

जो दूध और जलादि, रस अर्थात् शकर औषधि और घी आदि हैं। उनको वैद्यक शास्त्र की रीति से यथावत् शोध करके भोजनादि करते रहो। वैद्यक शास्त्र की रीति से चावल आदि अन्न का यथावत् संस्कार करके भोजन करना चाहिये। (देखो वेदभाष्य भूमिका पृ० १०५, १०६)

अतः सभी वेद के मानने वालों को योग्य है कि यथार्थ सच्छास्त्र को रीति के अनुसार वह मांसादि दुष्ट वस्तुओं का त्याग करके सदैव उस भोजन का प्रयोग करें जो रक्त रंजित न हो जिसके लिये हमें हानि न पहुंचाने वाले पशुओं के गले पर छुरी न चलानी पड़े। यही ईश्वर की आज्ञा है।

—o—

मांस खाना पाप है।

दूसरा भाग

रामचंद्र जी का सत्य दर्शन

वाल्मीकि रामायण का सार।

रामायण के अध्ययन से किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता कि रामचंद्र जी महाराज किस जाति से थे और वह किस कुल के पुकारे जाते थे। समस्त वेद शास्त्र के मानने वाले एक मत होकर कहते हैं कि वह सूर्यवंशी कुल में प्रसिद्ध राजर्षि थे। उनका समस्त जीवन हमें उपदेश दे रहा है कि वह आर्य जाति के शिरोमणि और वैदिक धर्म के मानने वाले सत्य के पुजारी और सत्यता पर कुर्बान थे। उनका धर्म हमें रामायण के इस एक ही श्लोक से पूरा हो जाता है कि :—

रक्षितास्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेद वेदांग तत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥

(वाल्मीकि रामायण सर्ग १।१४)

अपने धर्म की रक्षा करने और प्रजा पालने में तत्पर, वेद वेदाँग तत्व ज्ञाता, धनुर्वेद में निष्णात थे।

वह ईश्वर के भक्त, वेद के ज्ञाता, स्वभार्या के प्रिय, प्रजा के दुःख दूर करने वाले, भाईयों को हृदय से प्रिय, माता पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। वचन के दृढ़, सत्यवादी, शरीरों, राक्षसों, मांसाहारियों के शत्रु और ऋषियों की सच्चे हृदय से सेवा में तत्पर थे। जैसा कि रामायण अयोध्याकांड १८।३० में तथा कई अन्य स्थानों पर इस बात को रामायण कर्ता ने अच्छे प्रकार से प्रगट किया है।

बालकांड में भी लिखा है कि :—

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हितेरतः।
यशस्वी ज्ञान संपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥१२॥
प्रजापति समः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥१३॥
सर्व शास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभावान्।
सर्वलोक प्रियः साधुरदोनात्मा विचक्षणः॥१५॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्रइव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रिय दर्शनः॥१६॥

(बालकांड १।१२, १३, १५, १६)

धर्मज्ञ, सत्य प्रतिज्ञ, प्रजा हितरत, यशस्वी, ज्ञान सम्पन्न, शुचि तथा भक्ति तत्पर हैं। शरणागत रक्षक, प्रजापति समान प्रजा पालक, तेजस्वी, सर्व श्रेष्ठ गुणधारक, रिपु विनाशक, सर्व जीवों की रक्षा करने वाले, धर्म के रक्षक, सर्व शास्त्रार्थ के तत्ववेत्ता, स्मृतिमान्, प्रतिभावान् तेजस्वी, सब लोगों के प्रिय, परम साधु, प्रसन्न चित्त, महा पंडित, विद्वानों, विज्ञान वेत्ताओं तथा निर्धनों के रक्षक, अर्थात् सज्जनों के सहायक, विद्वानों के आदर करने वाले जैसे समुद्र में सब नदियों की पहुंच होती है वैसे ही सज्जनों की वहां पहुंच होती है। परम श्रेष्ठ, हंस मुख, दुःख सुख के सहन कर्ता, प्रिय दर्शन, सर्व गुणयुक्त और सच्चे आर्य पुरुष थे।

इसी रामायण में एक स्थान पर लिखा है कि कौशल्या के आनंद बढ़ाने वाले, समुद्र के समान गम्भीर स्वभाव, ज्ञानवान्, हिमालय समान धैर्यवान्, पराक्रम में युग समान, चन्द्रवत् प्रियदर्शन, क्रोध के समान कालाग्नि के समान, रक्षा करने में पृथिवी के समान, दान देने में कुवेर के समान, सत्य बोलने में मानो दूसरे धर्म, रामचंद्र जी ऐसे गुणी और पराक्रमी थे।

पुनः लिखा है कि :—

आनुशंस्यतनु क्रोशः श्रुतंशीलं दमः शमः।
राघव शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥ (अयो० ३३।१२)

अहिंसा, दया, वेदादि सकल शास्त्रों में अभ्यास, सत्य स्वभाव, इन्द्रिय दमन करना, शान्त चित्त रहना, यह छे गुण राघव (रामचंद्र) को शोभा देते हैं।

रामचंद्र जी का जीवन हमें रामायण से ज्ञात होता है। उससे स्पष्ट है कि उनका जीवन गर्भाधान संस्कार से अन्त तक सारा का सारा एक श्रेष्ठ आर्य धर्म जीवन है। चारों वेदों के विद्वान् उसके संस्कारों में विद्यमान रहे।

संक्षेपतः रामचंद्र जी चंद्रमा की भांति दिन प्रति दिन विद्या की उत्तम कलाओं से सम्पन्न होते गए। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुए तो अभी ब्रह्मचर्याश्रम पूरा नहीं किया था। सर्वप्रकारेण शास्त्र और शास्त्र विद्या में संलग्न थे कि अकस्मात् एक दिन महर्षि विश्वामित्र महाराजा दशरथ के पास पधारे उनको अपनी आत्म कथा सुनाई और कहा कि जब हम यज्ञ किया करते हैं, उसमें राक्षस विघ्न डाला करते हैं। जब हम बहुत दिनों तक यज्ञ करते रहते हैं और यज्ञ समाप्त होने को पहुंचता है तो वह बड़े पराक्रमी, बड़े चतुर, मारीच और सुबाहु नामी दो राक्षस आकर वेदी पर मांस, रुधिर की वर्षा करने लगते हैं। जिससे हमारे यज्ञ की प्रतिज्ञा उनके ऐसा करने से भ्रष्ट हो जाती है। जैसा कि यह श्लोक लिखा है कि :—

मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ।
तौ मांस रुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम्॥ (बालकांड १९।५)

ज्ञात होता है कि इस समय तक वाम मार्ग का चिह्न भी संसार में विद्यमान न था। इन दिनों यह दुष्ट मद्यमांस हवन की सामग्री में गिने न जाते थे। कुछ जंगली असभ्य दस्युओं के अतिरिक्त कोई आर्य पुरुष इसका प्रयोग न करता था। किन्तु पवित्र ऋषियों के हवन यज्ञ और उनके पवित्र कुंड मद्य मांस के डालने से भ्रष्ट हो जाते थे न कि पवित्र और शुद्ध।

महाराज दशरथ ने जब यह वृत्तान्त सुना तब बोले कि मुनि जी महाराज! मैं वृद्ध हूं! राक्षसों

के साथ पराक्रम की शक्ति नहीं। शरीर रोग ग्रस्त है। रामचंद्र अनुभव शून्य और विद्यार्थी तथा नवायु है। कभी किसी युद्ध में नहीं गये। तब विश्वामित्र ने कहा कि महाराज ! ऐसा नहीं है। रघुवंश वीर-वंश है। इसके नवायु बालक भी बहुत बड़े वीर होते हैं और रामचंद्र तो अब पूर्ण युवक हैं। आप को पितृ स्नेह के कारण अनुभव हीन प्रतीत होते हैं। वरन् ऐसा नहीं है। अन्ततोगत्वा वसिष्ठ जी ने कह सुनकर महाराज दशरथ के दो प्रिय, जिगर के टुकड़े रामचंद्र, लक्ष्मण ऋषि के साथ कर दिये। वहां से कोसों दूर विश्वामित्र जी का आश्रम था।

इस समस्त यात्रा में राम लक्ष्मण ऋषि के साथ दोनों काल सन्ध्या और अग्निहोत्र करते रहे तथा परमेश्वर के भजन में तत्पर रहे। कई प्रकार की विद्याएं भी ऋषि से प्राप्त कीं। गन्तव्य स्थान पर पहुंच कर कुछ समय वहां ठहरे और ऋषि का यज्ञ सम्पूर्ण किया। दुष्ट मांसाहारी राक्षसों को मार कर उनका काम समाप्त किया और भी कुछ विद्या महात्मा विश्वामित्र से प्राप्त की।

इन्हीं दिनों में सीता के स्वयंवर की सूचना भी वहां पहुंच गयी और ऋषि जी के साथ दोनों राजकुमार वहां जा विराजे। जैसा कि वहां भी भाग्यवश समस्त महाराजाओं के बहुत बड़े समारोह में रामचंद्र जी ने ही धनुष तोड़ा अर्थात् स्वयंवर की शर्त को पूरा किया और सीता ने भी इन्हीं के गले में जयमाला डाली। महाराज दशरथ अयोध्या से राजकीय बरात लेकर पधारे और एक ही दिन चारों भाईयों का चार कन्याओं से विवाह हो गया।

अयोध्या में बरात के लौट आने के पश्चात् कई वर्ष तक रामचंद्र जी अयोध्या में रहे। जब पूर्ण अनुभव की अवस्था में इन्हें युवराज बनाने का निर्णय होने लगा तो उनकी सुतीली माता ईरान के राजा की लड़की केकयी रुष्ट हुई और उसने महाराज से अपने गत वचनों के पूर्ण करने की इच्छा व्यक्त की।

दशरथ महाराज वचन के दृढ़ प्रतिज्ञ थे। पूर्ण करने पर समुद्यत हुए। उसने श्री रामचंद्र जी के लिये चौदह वर्ष के बनवास की आज्ञा मांगी और भरत जी के लिये युवराज बनाने की सम्मति दी। अन्ततः महाराजा ने न चाहते हुए भी आज्ञा दे दी। रामचंद्र जी सिर आंखों से स्वीकार करके बन जाने की मान गये। सीता जी ने साथ जाने का अनुरोध किया। लक्ष्मण जी सहगामी होने के लिये कटिबद्ध हुए। अन्त में तीनों प्रसन्नता पूर्वक राजकीय वस्त्र उतार कर ऋषियों के साधारण वस्त्र धारण करके महाराजा को नमस्कार करने के हेतु समुपस्थित हुए, उस समय केकयी माता ने यह आज्ञा दी कि तुम अभी इस अभिषेक को छोड़कर चौदह वर्ष तक दंडकारण्य में जाकर वास करो वहां जटा चीरधारी बन कर तपस्वियों की भान्ति रहना। (अयोध्या कांड सर्ग १८ श्लोक ३७)

पुनः राजा दशरथ ने जब धनादि साथ ले जाने को कहा तो रामचंद्र जी ने उत्तर दिया कि "हे राजन् ? जब हम सब भोग विलास छोड़कर निःसंग हुए, बन के कन्द मूलादि भोजन कर जीवेंगे तो हमारे संग धन दौलत सेनादि का क्या काम है ? हमारे लिये अब मुनियों के पहनने योग्य चीरादि की आवश्यकता है, सो मांगते हैं। जिस में चौदह वर्ष तक हमें बन में निवास करना है। बीच में टूटफूट न जाए। कन्द मूल खोदने के लिये एक कुंथा (कुदाल) और एक पिटारी चाहिये। सो आज्ञा करें कि केकयी की दासियां शीघ्र लावें। हम बन को चले जावें। (अयोध्याकांड सर्ग ३७ लोक २, ४, ५)

केकयी ने यह सब कुछ शीघ्रता से मंगवा दिया। यही कन्दमूल फल खाने का वचन देकर मुनियों की भान्ति रहने पर दृढ़ रहूंगा, कह कर घर से निकले।

इसी प्रकार जब रामचंद्र जी माता कौशल्या से मिलने गये तो वहाँ भी यह वचन दिया।

चतुर्दशहि वर्षाणि बत्स्यामिनिर्जनेवने।
कंद मूल फलै जीवन् हित्वामुनिवदामिषम्॥

(अयोध्या कांड सर्ग २०।२६)

हे माता ? मैं १४ वर्ष तक वन में मुनियों की भान्ति कंदमूल और फलों से अपना जीवन निर्वाह करूंगा न कि मांस से (क्योंकि वह राजसीय भोजन है) और ऐसा ही आगे श्लोक ३१ में भी लिखा है :

"इसलिये वन के कन्द, मूल, फलादि भोजन करते हुए चौदह वर्ष निर्जन वन में बसेंगे।" इस के पश्चात् कौशल्या ने रामचंद्र जी के वन जाते समय जिन शब्दों में आज्ञा दी है वह भी ध्यान देने योग्य है "मुनि वेश धारण किये महावन में विचरते हुए हे पुत्र ? तुम को सब देवता सुखदाई हों। राक्षस, पिशाच, दैत्य आदि जितने क्रूर कर्म करने वाले माँस भक्षी हैं, हे पुत्र ? वन में इनमें से किसी का भय तुम को न हो। इन के अतिरिक्त और जो दुष्ट जाति मनुष्य मांस भोजन करने वाले वन में रहते हैं उन सब के लिये भी मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि तुम को वन में न मारें।" (अयोध्या कांड सर्ग २५ लोक १६, १७)

पुनः वह स्थान भी देखने योग्य है जहां रामचंद्र जी वन का वृत्तान्त सीता को सुनाते और वहां कष्टों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि, वृक्ष से अपने आप गिरे हुए फल भोजन करने को थोड़े बहुत मिलते हैं, रात्रिदिवा इन्हीं पर सन्तोष कर बैठना पढ़ता है।" पुनः फल प्रति दिन नहीं मिलते। कभी २ उपवास भी करना पड़ता है।" फिर जितना मिल जाएगा, उतने से ही निर्वाह करना पड़ेगा। बनवासियों को मन माना भोजन कभी नहीं मिलता, इस से वन दुःखदायी है।" (अयो० सर्ग २८।१२, १३)

भरद्वाज और रामचंद्र जी की बात चीत में लिखा है कि :—

"पुनः धीरे २ आगे को बढ़े, देखा तो महात्मा भरद्वाज जी अपने शिष्यों के संग बैठे हुए तपस्या करते और अग्नि में आहुति दे रहे थे। उसी समय में राम लक्ष्मण सहित जानकी प्रणाम करने लगे। प्रणामानन्तर अपने को बताया कि हे मुनिराज ? हम दोनों महाराजा दशरथ जी के पुत्र हैं और राम, लक्ष्मण हमारे नाम हैं। यह जनक की कन्या वैदेही मेरी १ स्त्री है। जब हम वन को चले तो यह भी पीछे वन को चली आई। हमारे पिता जी ने वनवास तो मुझे दिया था पर हमारे भाई लक्ष्मण भी यही परम दृढ़, व्रत धारण कर प्रेमवश साथ आये। अब सब को पिता जी की आज्ञा समझिये जो तपो वन को आए हैं। यहां मुनियों के महा कंद मूल फल ही भोजन करते हैं।

महाराज कुमार श्री रघुराज के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कुशल प्रश्न पूछ चरण धोने और पीने के लिये जल दिया। पश्चात् नाना प्रकार के रस, अन्न, फल, मूलादि तीनों के भोजनार्थ मंगवाए।"

(अयो० ५४/११-१८)

पुनः भरत जी ने जो शपथ महाराणी कौशल्या के सम्मुख इस बात के प्रमाणार्थ खाई हैं कि मेरी स्वीकृति से रामचंद्र जी को वनवास नहीं हुआ। मैं सर्वथा निर्दोष हूं। वहां भी इन बुरे कार्यों को निन्दनीय लिखा है :—

"जिस की सम्मति से राम वन को गए हूं उस को वह दोष लगे जो मद्य, मधु, माँस, विषादि

निषिद्ध वस्तुओं को बेच द्रव्य एकत्र कर उसी से गृह युक्त और कुटुंबों के पालन पोषण करने वालों को होता है। (अयो० ७६/३८)

पुनः जब भरत जी रामचंद्र जी से चित्रकूट में मिलने आए। उस समय रामचंद्र जो ने उन को जो उपदेश किये हैं उन में अथर्व कांड ६ मंत्र १ तथा मनु ७।५० आदि के अनुसार आखेट, द्यूत, मद्यपान, दुराचारादि बातों का बहुत निषेध किया है। (अयो० १००।७१)

जब जाबाल नास्तिक बन कर रामचंद्र जी को बहकाने लगा तब रामचन्द्र जी ने कहा :—

हे जाबाल जी ? तुम से पहिले जितने ब्राह्मण हुए, सभी ने वेदानुसार बहुत शुभ कर्म किये। इसी से तुम्हें छोड़ कर अब भो जो ब्राह्मण हैं यह लोक पर लोक सब छोड़कर कल्याण कारक यज्ञ करते और सत्य बोलते हैं। आप की भान्ति झूठ नहीं बोलते। और धर्म से युक्त सज्जनों के साथ तेजस्वी, दान देने वा सब शुभ गुणों में प्रधान, जीव हिंसा रहित, निर्मल चित्र, वसिष्ठादि मुनि लोक में पूज्य हैं।"

(अयोध्या कांड १०६।३६)

जब दंडकारण्य में राम जी ने प्रवेश किया तो वहाँ रामायण में लिखा है कि "नाना प्रकार के फल मूल कंदादि मुनियों के भोजनार्थ एकत्र हैं। वनके बड़े बड़े पुण्य दायक वृक्षविद्यमान हैं जिन में अति स्वादिष्ट फल लगे हैं।

और जब रामचंद्र जी वहां के ऋषियों से मिले तो उन्होंने उन्हें क्या दिया। लिखा है "ऋषियों ने परमानन्दित हो स्वास्ति वचनादि मंगल दायक शुभ स्वर से पढ़े। इस के पश्चात् मूल फल पुष्पादि दिया, पुनः सुन्दर स्थान रहने के लिये बनाया। (अरण्य० १।५, १७)

निखाद का राजा गूह जव शुभ वस्तुएं लाया था, रामचंद्र जी ने लेने से इन्कार कर दिया। इन सब को हमने जाना। परन्तु ग्रहण नहीं कर सकते। क्योंकि हम कुशा, चीर, मृगचर्म धारण, किये हुए हैं और फल मूलादि ही भोजन करते हैं। (अयोध्या कांड ५०।४४)

जब सुतीक्ष्ण ऋषि से मिले तो वहां लिखा है कि :—

"फल मूलादि भोजन कर श्रीराम, लक्ष्मण व जानकी जी सुतीक्ष्णा से पूजा पाए रात्रि भर नहीं सोए। बड़े प्रातः काल जागे और शौच स्नान कर संध्या, आग्निहोत्र किया।" (अरण्य कांड सर्ग ७/१-४)

जिस समय श्री राम चंद्र जी वनवास को गए और धनुषबाण कंधे पर धारण कर ऋषि की सुरक्षा का विचार किया। इस का कारण रामायण में यह लिखा है कि :—

रामचंद्र जी ने जावाल से कहा कि जो पुरुष वेद मर्यादा से रहित हैं, वे पापाचार युक्त होते हैं। इसी से वेद से बाहिर चलने के कारण सज्जनों के समाज में उन का मान नहीं होता। पुनः आप के वचन भी वेद विरुद्ध ही ठहरे इस लिये सज्जन लोग निरादर करते हैं। कुलीन, अकुलीन, वीर और भीरु पवित्र, पवित्र पुरुष अपने आचरण से ही जाना जाता है। जो वेदानुसार कार्य करता वह कुलीन जाना जाता जो वेद विरुद्ध आप के वचनानुसार चाल चलन रखता, वह अकुलीन, इसी प्रकार वीर और भीरु, पवित्र और अपवित्र में भी भेद जानो। (अयोध्याकांड १०६।३, ४)

अयोध्या के वर्णन में बाल्मीकि ने सब वस्तुओं का वर्णन किया है जो उस समय थीं, किन्तु कसाइयों की दुकानों का कहीं भी वर्णन नहीं और न बकरे लटकने वा उनकी ग्रीवा मारने का कहीं

वर्णन है। वास्तव में उस समय अयोध्या स्वर्ग भूमि थी।

बहिश्त आंजा कि आज़ारे न बाशद।
कसेरा बा कसे कारे न बाशद॥+

झगड़ा, रक्तपात, वध, दुराचारादि का चिह्न तक भी नहीं मिलता।

विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर

सद्धर्म के विरोधी, मांसाहारी लोग रामचंद्र जी के जीवन पर कलंक लगाने के लिये प्रसिद्ध करते हैं कि उन्होंने मृग मारे हैं और आखेट किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मांस भी खाया है।

इस आधार पर हम विरोधियों के समस्त आक्षेपों का खंडन करते हैं।

(प्रश्न १) रामचंद्र जी ने वनवास के समय सूत से कहा कि हम नहीं जानते कि अब पुन: कब सरयू के तट पर पुष्पित वन में शिकार खेलेंगे और अपने माता पिता से मिलेंगे। (अयो० ४९।१५)

(उत्तर) शिकार खेलना सर्वथा बुरा नहीं है और विशेष करके उस समय जब दुष्ट पशुओं, सिंह, भेड़िया आदि का मारना प्रयोजन हो।

और यह शास्त्रानुकल है किन्तु हानि न करने वाले पशुओं का मारना बहुत बड़ा पाप है। जैसा कि स्वयं रामचंद्र जी ने भरत को इसका निषेध किया है। हानिकारक पशुओं के मारने के लिये सदैव संलग्न रहना और उसे एक आवश्यक कर्तव्य कर्म जानना भी निषिद्ध है। जैसा कि स्वयं रामचंद्र जी ने भी इससे अगले श्लोक में कहा है कि कुछ शिकार खेलना हमको बहुत प्रिय नहीं। अत: इससे किसी प्रकार मांस खाना प्रयोजन नहीं। क्योंकि वह केवल दुष्ट जीवों के दंड देने के लिये शिकार खेलते थे न कि पेट पूजा के लिये अथवा उदर को पशुओं का कबरिस्तान बनाने के लिये।

(देखो अयो० ४९।१६, १७)

स्वयं रामायण में भी लिखा है कि वहाँ जो दुष्ट मृग पक्षी थे को डराते हुए श्री रामचन्द्र एक मुहूर्त भर में प्रयाग में मुनि भारद्वाज के पास जा पहुंचे। (अयो० ५४।९)

वनस्थ मुनि लोग पशु पालन कार्य करते थे न कि भक्षण। रामायण के इसी सर्ग में लिखा है कि:

मुनिराज के चारों ओर पालतु मृग, पक्षी और मुनि लोग बैठे थे। सबके साथ रामचन्द्र जी की पूजा कर भरद्वाज जी धर्मयुक्त वचन रामचन्द्र से बोले। (अयो० ५४।१९, २०)

(प्रश्न २) रामचन्द्र जी मृग मारने के लिए गए और पीछे रावण सीता को ले गया। इससे प्रगट है कि वह हिरण मारकर अवश्य खाया करते थे।

(उत्तर) इस स्थान अथवा अन्य किसी स्थान पर मृग को खाने के लिए मारने का कोई वर्णन नहीं। किन्तु स्वर्ण रूप हिरण देखकर सीता का मन ललचाया। वह उसके रूप पर मुग्ध हो गई और रामचन्द्र को उसके पकड़ने के लिए प्रार्थना की। उसके हठ के कारण पहले राम पुन: लक्षमण दोनों गए और जब पकड़ा तो ज्ञात हुआ कि वह छल था, वास्तविक हिरण न था। मारीच नाम का एक दैत्य या असभ्य जंगली मनुष्य हिरण का स्वांग धारण कर व खाल ओढ़कर भरमाने आया था। जिससे पीछे रावण सीता को भगा ले जाए। जैसा कि रामायण में इस स्थान पर लिखा है कि:—

+स्वर्ग वहां, जहां दुःख न हो और किसी को किसी से काम न पड़े।

इदंहि रक्षो मृग संनिकाशं प्रलोभ्यमां दूरमनुप्रयातम् ।
हतं कथं चिन्महता श्रमेण स राक्षसोऽभून्यमृण्भाण एव ॥
मनश्च मे दीनमिहा प्रहृष्टं चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम् ।
असंशयं लक्षमण नास्ति सीता हृता मृता वा पथि वर्तते वा ॥

(अणय० ५७।२२, २३)

यह मृग रूप राक्षस हमको ललचाता हुआ बहुत दूर चला गया था। वहां बड़े श्रम से हमने उस को मारा तो यह मरण समय राक्षस ही निकला। मेरा मन दुखी है। बाईं आंख फड़कती और विकार + युक्त हो रही है। कुछ संशय नहीं है। हे लक्ष्मण ! कि अब सीता वहां नहीं है। कोई हर ले गया, वा मर गई अथवा मार्ग में है।

इसी अवसर पर रामचन्द्र को विद्वान लोगों ने दोष दिया है कि वह ऐसे बुद्धिमान होकर किस प्रकार स्वर्ण मृग के होने पर विश्वास कर बैठे। जैसाकि हितोपदेश के लेखक विष्णु शर्मा जी ने कहा है कि :—

स्वर्ण के हिरण का होना असंभव है किन्तु पुनरपि रामचन्द्र जी लोभ में आ गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि विपत्ति काल में बुद्धिमानों की बुद्धि पर भी आवरण (पर्दा) पड़ जाता है।

(प्रश्न ३) सीता ने यमुना से पार उतरते समय मांस और मद्य के घड़े उसमें डालने के वचन से नदी से प्रार्थना की कि यदि मेरा पति सुखपूर्वक घर लौटे तो मैं ऐसा करूंगी।

(उत्तर) यह बात कई कारणों से मिथ्या है।

(प्रथम कारण :—) यह है कि यमुना अथवा गंगा दोनों नदियां जड़ हैं। उनकी पूजा इन पदार्थों से कदापि नहीं हो सकती। इसको वह माने जो इन्हें चेतन अथवा इस जड़ पूजा और नदी पूजा मानता हो।

द्वितीय कारण :—

जब सीता वापिस आई तो यह वचन कदापि पूर्ण नहीं किया गया। इस लिये भी मिथ्या है कि किसी मद्यमांस के आसक्त वाममार्गी ने यह श्लोक डाल दिये हैं। अन्था लेख के विषय से इस का कोई सम्बन्ध नहीं और न यह घटना हुई।

तृतीय कारण :—

इस श्लोक में मांस शब्द नहीं है और न किसी पशु के मारने का उल्लेख है किन्तु श्लोक में तो गो सहस्रेण सुरा घट शतेन लिखा है। (अयोध्या कांड ५५।१९, २०)

अतः मांस का इस से कोई सम्बन्ध नहीं। शेष रही सुरा की बात। इस का खंडन राम लक्ष्मण के वहनों से स्वयं सिद्ध है जैसाकि एक बार सुग्रीव ने मद्य पान किया तो राम लक्ष्मण ने उसे वहां बहुत ही बुरा कहा। भरत जी ने शपथों में भी इस का खंडन किया है। अतः यह घटना कदापि घटित नहीं हुई।

(प्रश्न ४) जब रामचंद्र जी चित्र कूट में पहुंचे तो झोंपड़ी वना कर लक्ष्मण को आज्ञा दी कि

+ऐसा लोक प्रसिद्ध हैं किन्तु काल्पनिक है। (अनु०)

हिरण मार कर लावे जिस से यज्ञ किया जाए। लक्ष्मण जी इस आज्ञानुसार हिरण मार कर लाए जिससे यज्ञ किया और पकाया गया। (मांस प्रचार पृष्ठ ५६)

(उत्तर) वहां तो ऐसा नहीं किन्तु इसके विरुद्ध लिखा है। हे लक्ष्मण ? एक मृग पकड़ लाओ। उस को पर्णशाला (कुटिया) के द्वार पर बांधेंगे। तब वास्तव की पूजा करेंगे। क्योंकि जो लोग बहुत दिन जीना चाहते हैं उन को चाहिये कि बिना वास्तव की पूजा के उस में न रहें। (अयो० ५६।२२)

हे लक्ष्मण ? इससे अति शीघ्र मृग लाओ। सन्ध्या न होने पावे। जैसी शास्त्र में वास्तु पूजा लिखी अवथा जैसे कुल की रीति है। वैसा पूजन करें। (अयो० ५६।२३)

भ्राता के वचन सुन, लक्ष्मण जी शीघ्र एक मृग लाए। तब रामचंद्र जी पुनः बोले।
(अयो० ५६।२४)

हे लक्ष्मण ? इस मृग के खाने के योग्य कुछ फल लाओ। उन्हें अग्नि में सेंक इस के भोजन के लिये दो और उन्हीं फलों से हम वास्तु शान्ति के लिये हवन भी करें। अतः शीघ्रता कीजिये। क्योंकि ध्रुव मुहूर्त्त है। इसी में दिन के रहते पूजा हो जाए। (अयो० ५६।२५)

रामचंद्र जी के ऐसे वचत सुन, वह जो कृष्ण मृगों के खाने योग्य फल लाए थे। अग्नि जला कर लक्ष्मण जी ने पकाए। (अयो० ५६।२६)

जब बन कर परिपक्व हुए। फलों को लालिमा जाती रही तब लक्ष्मण जी पुरुषों में सिंह रूप राम चंद्र जी से बोले। (अयो० ५६।२७)

हे देवताओं के समान रूप श्री राम ? कृष्ण मृगों के खाने योग्य फल हम ने पकाए हैं। अब देवताओं की पूजा कीजिये कि आप इस कर्म में कुशल हैं। (अयो० ५६।२८)

यह सुन स्नान कर जप करने में चतुर एक ओर से सब मंत्र पढ़ २ कर आहुति देने लगे। यहां तक कि वास्तव पूजन समाप्त हुआ। (अयो० ५६।२९)

सब वास्तु देवताओं ने आ प्रत्यक्ष में अपना २ भाग लिया। उन को देख, प्रसन्न चित्त हो, राम चंद्र जी ने इस कुटिया में प्रवेश किया। (अयो० ५६।३०)

उस समय उन्ही हुत शेष फलों से बलिवैश्व देव और रौद्र बलि सब किया। (अयो० ५६।३१)

इस के पीछे जप कर के नदी में पुनः यथाविधि स्नान कर के पाप नाशार्थ पुनः फलों की बलि दी। (अयो० ५६।३२)

पुनः उस पर्ण कुटीर में वेदियां बनाई। देवताओं की सहायता की उनके लिये पृथक् २ चबूतरे बना दिये। जिस प्रकार का वह स्थान था उस के अनुरूप छोटे २ स्थान देवताओं को स्थापित किया।
(अयो० ५६।३३

अतः देखिये। इस में मृग मारने और उस के खाने का वर्णन कहां है ? सर्वथा नहीं। यद्यपि इस में+काल्पनिक देवताओं की पूजा के चिन्ह पाए जाते हैं जो किसी प्रकार भी उचित नहीं किन्तु मांसा

+यह सर्ग प्रक्षिप्त है। वर्तमान रामायण में मांस प्रेमियों ने मृगों को मारकर उससे मांस बलि देने का विधान भी कर दिया है। जड़ पूजा तथा मांस बलि को सिद्ध करने के लिए ही वाममार्गियों का यह सारा प्रयास क्षेपक होने से वेद विरुद्ध है। वर्तमान रामायण में कई स्थानों पर क्षेपक लिखा हुआ है। [अनुवादक]

हार तो इस में कदापि नहीं। (देखो रामायण नवलकिशोर १८८५ ई० पृष्ठ ३५१, ३५२ जिसमें वाल्मीकि का शब्दानुवाद विद्यमान है)

फ़ारसी महाभारत जो फैजी ने रामचंद्र जी की जीवनी लिखी है वहां लिखा है कि :—

"ता आं कि रामचंद्र रा चित्रकूट दीदन्द कि बसूरते सन्यासियान बर आमदह लिबास अज़ चर्मआहू साखतह मू हाए यूलीदह बर सरे दारद व तीर कमान बदस्त गिरुफ्तह् बा लक्ष्मण वसीता दरबियाबान बसर में कर्दन्द। व औकात बबर्गे दरख्तां व गया व सहरा व मेवाए जंगल में गुजरा नीदन्द।×

कुछ रामायणों में इस स्थान पर विशेषय: बम्बई संस्करण में पाठ भेद है। संभव है कि उस से झटका प्रचारक अथवा मांस प्रवर्तक लोग कुछ खेंचातानी करके मांसाहार सिद्ध करना चाहें। इस आधार पर हम निम्न कारणों से उन का खंडन करते हैं।

प्रथम कारण :—

यदि असंभव को माना जाय कि उन्होंने हिरण हवन के लिये मारा और पुन। "परमात्मा न चाहें खाया भी। जबकि यह सिद्ध नहीं तो उन का कर्म स्वयं उनके प्रबल वचनबद्धता के विरुद्ध है, जो वह माता कौशल्या, केकई, दशरथ और भारद्वाज आदि के सामने सोच समझकर होश के साथ कर चुकें हैं। और रामायण में यह भी बीसियों स्थानों पर लिखा है कि वह सत्य प्रतिज्ञ थे।

(देखो अरण्य कांड १०।१८, १९)

द्वितीय कारण :—

उन का ऐसा करना ऋषि मुनियों और सूत्रकारों के विरुद्ध है।

आह्वनीये मांस प्रतिषेधः।

(कात्यायन श्रौत सूत)

हवन की अग्नि में मांस कदापि न डालना चाहिये। और आश्वलायन ऋषि कहते हैं हवन की सामग्री में मांस नहीं है।

तृतीय कारण :—

इस सर्ग में स्पष्ट वर्णन है कि उस स्थान पर फलमूल कंद बहुत अधिक थे।

(देखो अयो० ५६।६-१४)

अतः वचन तोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

×(भावार्थ) जब लोगों ने राम चन्द्र को चित्रकूट में देखा कि सन्यासियों के रूप में मृगचर्म ओढ़े हैं जिसपर बाल थे। धनुष हाथों में लिए लक्ष्मण और सीता के साथ वन में निवास करने लगे और वृक्षों के पत्तों, जंगल की घास और वनस्थ फलों पर निर्वाह करते थे। (अनुवादक)

चतुर्थ कारण :—

देवताओं की स्थापना अर्थात् मूर्ति पूजा जो मांसाहार से भी अधिक पाप है। उस का भी इस सर्ग में उन पर दोषारोपण किया गया है। जबकि उस समय इन बातों का नाम और चिन्ह भी न था। और सब से बढ़ कर वास्तु गृहाधिष्ठातृ देवता का पूजन स्वयं वेद विरुद्ध है। अतः किसी प्रकार यह बात उचित नहीं हो सकती और रामचंद्र जी के सत्यवादी होने के कारण यह दोषारोपण सर्वथा मिथ्या हैं।

पंचम कारण :—

अन्य बीसियों स्थानों पर भी रामचन्द्र जी झोंपड़ी (पर्णशाला) बना कर रहे। किन्तु इस दोष का कहीं वर्णन नहीं या तो अन्य सब स्थानों पर पापी रहे और यहां धर्मात्मा। या अन्य सब स्थानों पर धर्मात्मा। किन्तु बात यह है कि वह वास्तव में धर्मात्मा थे। किसी वाममार्गी ने पाठ भेद कर दिया है और यथार्थ वही है जैसाकि स्वयं रामचंद्र ने सर्ग १० लोक १२ में कहा है कि मांस खाना राक्षसों और दुष्टों का काम है। आर्य लोगों का नहीं।

इस के अतिरिक्त महाभारत में जो वेद धर्म के मानने वालों और सत्य प्रिय राजाओं की सूची लिखी है, जिन्होंने समस्तायु न मांस खाया और न मद्य पान आदि दुराचार में फंसे। उन में भी हमारे राजर्षि रामचन्द्र जी का शुभ नाम विद्यान है।

(प्रश्न ५) भरद्वाज ने जो भोजन भरत जी की सेना को दिया। उसमें मांस व मद्य विद्यमान था।

(उत्तर) निःसन्देह वहां सेना के आतिथ्य में इन दोनों बातों का वर्णन है किन्तु वहां यह भी लिखा है* कि इन्द्र की समस्त अप्सराएँ और ब्रह्मा की समस्त स्त्रियाँ तथा विश्वकर्मा, कुबेर यमराज इन्द्रादि सब का आह्वान कर के बुलाया संसार भर की नदियों को वहां बुलाया और सबसे विचित्र बात वहाँ लिखी है कि वह वन जो उत्तर कुरु देश में हैं जिन के वृक्षों में सुन्दर नारियां ही फल लगती हैं। उन कुबेर के वनों को बुलाते हैं।

---

*रामायण में पाठ भेद बहुत हैं और उत्तरकाँड तो सर्व सम्मत किसी ने पीछे से लिखकर मिला दिया है। शेष रहे छः कांड उनमें इन्द्र की समस्त अप्पसरायें और ब्रह्मा की समस्त स्त्रियाँ तथा विश्वकर्मा, कुबेर, यमराज, इन्द्रादि सबका आह्वान करके बुलाया।

जिनका कोई विश्वास नहीं। एक तो अयोध्या काण्ड में देखो पृष्ठ ३८८ ओर दूसरे अरण्य कांड में देखो पृष्ठ ५५० बम्बई संस्करण १८८८ ईस्वी।

गंगा उत्पत्ति का सर्ग भी तुलसीदास के समय न था क्योंकि जो रामायण चित्रकूट से तुलसीदास की लिखी हुई निकली है उसमें सर्वथा नहीं (बालकांड सर्ग ३९-४४ तक)

और युद्धकांड में भी दो सर्ग प्रक्षिप्त हैं। जो रामायण लखनऊ में नवल किशोर के यहां १८८९ ईस्वी में छपी है। उसमें युद्धकांड के १२८ सर्ग हैं। और जो बम्बई में प्रकाशित हुई है उसमें १३० हैं। केवल यही नहीं किन्तु बम्बई और कलकत्ता वाली [रामायण] में बहुत अन्तर है और श्लोकों का तो बहुत स्थानों पर पर भेद है।

प्रयोजन यह कि समस्त वन, पर्वत, समुद्र, नदियां वहां बुलाई गईं। एक २ व्यक्ति की सेवार्थ पंद्रह-पंद्रह स्त्रियां नियत की गईं।

ऐसी २ अन्धेर की बातें इस सर्ग में लिखी हैं जो सारी की सारी चमत्कार युक्त हुईं।

(देखो अयोध्या काँड सर्ग ६१।१-३८

अत: जो इन समस्त चमत्कारों और व्यर्थ मिथ्या बातों पर विश्वास करे। जो सब असंभव बातों को माने और बुद्धि को तिलांजलि दे दे। उसका अधिकार है कि किसी को मांसाहारी कहे। इस आधार पर यह सारी बात घड़ण्त व्यर्थ और मिथ्या होने से विश्वासनीय नही। किन्तु इस चमत्कार पूर्ण वर्णनों के भरत और रामचंद्र के मांस खाने का यहां भी उल्लेख नहीं। अत: हम तो इन महात्माओं की जीवनी बतलाते हैं अन्य सेवाकारों की नहीं।

(प्रश्न ६) रामचन्द्र जी ने बिना अपराध हिरणों और राक्षसों को क्यों मारा ?

(उत्तर) ऐसा कदापि नहीं। किसी को अपराध के बिना नहीं मारा। स्वयं रामायण में इसका कारण भी लिखा है कि "ऋषियों ने रामचन्द्र जी को कहा कि कुछ बात बनावट की नहीं कहते। आप यहां पधारें और देखें कि महात्मा मुनियों के अस्थि-पंजर पड़े हैं जिनको राक्षसों और जंगली लोगों ने मार मार कर भक्षण कर लिया है। प्राय: जो मुनि लोग पम्पा नदी से लेकर मंदाकिनी के तट तक के वनों में निवास कर रहे हैं और जो चित्र कूट पर्वत पर निवास करते हैं उन्हीं लोगों का नाश यह राक्षस लोग

कई स्थानों पर बड़ी गप्पें भी हैं जो किसी प्रकार विश्वासनीय नहीं। रामचन्द्र जी ने दस सहस्र वर्ष तक राज्य किया। (लंका कांड सर्ग १२८ श्लोक ६५ व कुम्भकरण दस सहस्र वर्ष तक जल में तपस्या करता रहा। विभीषण पांच सहस्र वर्ष तक एक पांव पर खड़ा तपस्या करता रहा। रावण दस सहस्र वर्ष तक निराहार तपस्या करता रहा और अपने दस सिरों को बारी बारी आग में जलाता रहा। इससे यह बल प्राप्त किया। (उत्तरकांड सर्ग-१०।३-१२ अयो० सर्ग ५३। श्लोक ६, १०, १२ में रामचन्द्र जी की ओर से पिता को मूर्ख और कामी बताया है। और बाल कांड सर्ग ४८-४६ अहल्या की कथा सर्वथा असंभव और अनुमानरहित बातों की नकल है।

इसी प्रकार बालकांड सर्ग ४५ में समुद्र मन्थन की भी केवल पौराणिक गप्प है। और जो कोई सारा वाम-मार्ग और महीधर भाष्य का प्रभाव देखना चाहे तो कृपा करके बालकांड सर्ग १४ श्लोक ३३, ३४ को देखें। और प्रत्यक्षत: यदि कोई ध्यान दे तो उसे स्पष्ट प्रतीत होगा कि सारा अश्वमेध प्रकरण सर्वथा कल्पित है। क्योंकि ऋषि शृंग को वह राजा रोम पाद के देश में केवल पुत्रेष्ठि के लिए लाए थे। (देखो सर्ग ११ श्लोक ५ से ३१ तक) और उसके साथ देखिए सर्ग १५ श्लोक १, २, ३ आदि। मध्य में सम्बन्ध और प्रकरण के बिना अश्वमेध का सदाचार विरूद्ध वर्णन कर दिया। अयोध्या कांड के सर्ग १०६ के श्लोक १४ आदि बुद्ध मत के पश्चात मिलाए गए और इसी प्रकाय सर्ग १०० श्लोक ३८ में भी बुद्ध, जैन और वाम मार्ग के पीछे डाले गए। अत: किस प्रकार सम्भव है कि रामचन्द्र के जीवन पर इन वाम मार्गियों ने थोड़ा बहुत कलंक लगाने का यत्न न किया हो। सैंकड़ों स्थानों पर इनके सम्बन्ध में वर्णन है। वह स्वयं वचन बद्ध हैं कि हम फल, मूल आदि खाने वाले हैं और सबसे बड़ी विचारणीय बात यह है कि परमात्मा न करे यदि रामचन्द्र भी मांसाहारी सिद्ध हो जाएं तो राम और रावण अर्थात् आर्य और राक्षस में कुछ भेद नहीं रहता। पाठक अवश्य विचार करें और इस वाम मार्ग में से निकलकर सत्य धर्म के प्रचार में तत्पर हों।

करते हैं। (देखो अरण्य० सर्ग ६।१६, १७) इसी लिए रामचन्द्र जी ने इन दुष्टों के मारने का सकल्प किया।

मृग के अर्थ समस्त वनस्थ पशु हैं। केवल हिरण नहीं किन्तु सिंह, व्याघ्र, भेड़िया आदि सब इस में शामिल हैं। जैसाकि यह बात किसी संस्कृत के ज्ञाता से छिपी नहीं। रामायण में जहां राक्षसों का वर्णन लिखा है। वहां स्पष्ट लिखा है कि यह मांसहारी लोग थे। लगभग दो तीन सौ स्थानों पर रामायण में मांसाहारी को राक्षस लिखा गया है। स्वयं रावण के सम्बन्ध में भी ऐसा लिखा है। उसके मरने पर कई पशुओं का वध किया गया। (देखौ युद्धकांड)

वास्तव में मांस खाना अथवा पशुओं को खाने के लिए मारना, राक्षसों की विधि है। रावण के कार्यों और राक्षसों के कर्मों से हमें कोई प्रयोजन नहीं। वह तो सदैव शास्त्रोक्त कर्मों से रहित हैं। हमारा उद्देश्य राम जीवन कथा वर्णन करना है कि इस पवित्र राजर्षि ने कहीं भी मांस नहीं खाया। किन्तु वह इसे राक्षसों का भोजन बताते हैं। जैसा कि हम एक अन्तिम घटना सुनाकर समाप्त करते हैं।

जब रामचन्द्र जी सुतीक्ष्ण मुनिराज (जो सब प्राणिमात्र के हित में तत्पर था) की कुटिया में पहुंचे और उससे मिले तथा कोई अन्य स्थान रहने के लिए पूछा तब ऋषि ने उत्तर दिया कि:—

"हे राम ! यदि ऐसा चाहते हो ? तब तो यही आश्रम सर्वगुण युक्त है, आनन्द से रहिए। ऋषि लोग भी यहां विचरा करते हैं। इससे किसी प्रकार का भय भी नहीं और फूल मूल फल यहां सब काल में मिला करते हैं। हां, एक बात है। यहां बड़े व्याघ्र, सिंहादि मृग आया करते हैं। परन्तु वह किसी को नहीं मारते। केवल अपना रूप दिखा, सबको लुभा निर्भय यहां से चले जाते हैं। आप उनसे न डरिएगा, न उन्हें मारिएगा। यही एक दोष मृगों के आने जाने का कुछ २ है और कुछ भी नहीं। महर्षि के ऐसे वचन सुन अतिधीर रामचन्द्र जी धनुष पर वाण चढ़ाकर बोले कि हे महाराज ! उनके आगत मृग समूहों को अतितीव्र वाणों से हम मार डालेंगे। क्योंकि जो आपको उनसे कष्ट हुआ तो इससे अधिक हमें और क्या कष्ट होगा ?

यह सुन मुनिराज कुछ न बोले। रामचन्द्र जी ने जाना कि मुनि को मृगों का वध रुचिकर नहीं। उससे कहा कि इस मृग बाधित स्थान पर हम बहुत दिनों तक बसना नहीं चाहते। यह कहकर रामचन्द्र जी संध्या करने लगे। सायं संध्योपासन कर वहीं सुतीक्ष्ण जी के आश्रम पर लक्ष्मणजी के समेत निवास किया।"

(अरण्यकांड सर्ग ७।१७-२३)

इससे आगे सर्ग ९ में सीताजी ने मनोहर वाणी से रामचन्द्र जी को कहा कि तीन बड़े भारी पाप ताप हैं। एक पर स्त्री गमन, दूसरा मिथ्या भाषण, तीसरा अकारण किसी की हत्या करना। इनमें से पहिला और दूसरा तो आपमें सर्वथा नहीं। हां, तीसरा है कि आप अपराध और शत्रुता के बिना राक्षसों को मारते हैं, इसपर सीता जी ने रामजी को एक प्राचीन इतिहास सुनाया कि एक ऋषि किसी वन में तपस्या करते थे। इनकी बहुत तपस्या देख ईर्षा वश ब्रह्मा देश वासी राजा इन्द्र हाथ में तलवार लिए, योद्धा का रूप बनाए मुनि के आश्रम पर आया। अति पुण्य रूप तपस्या करते हुए मुनि के समीप अपनी तलवार धरोहर रखकर चला गया। मुनि इस असि की रक्षा में निमग्न हुआ कि कोई उसे न ले जाए। प्रायः उसे पास रखता था। प्रतिदिन शस्त्रधारण किए विचरने के कारण मुनि की बुद्धि अति रुद्र रूप हो गई। तपस्या करने का विश्वास जाता रहा।

प्रतिदिन उससे जीवों को मारने लगे। ऐसा रुद्र स्वभाव हो गया कि महा प्रमत्त हो गए। सद्धर्म जाता रहा, तीक्षण शस्त्र धारण करने से मृत्यु के उपरान्त मुनिराज नरक को गए।"

यह कह सीता जी बोलीं कि आप भी अपराध और वैर के बिना किसी मृग, पक्षी और राक्षस के मारने की बुद्धि न कीजिए। क्योंकि हे वीर ! अपराध के बिना किसी को मारना कदापि वीरता नहीं और न इसकी प्रशंसा विद्वान लोग करते हैं। क्षत्रियों को धनुष धारण करना निरपराध जीवों को मारने के लिए नहीं है। प्रत्युत दुःखी दीनों की रक्षा, सहायता के लिए है।

(संक्षेपतः अरण्य कांड सर्ग ९)

इसका उत्तर रामचन्द्र जी ने इससे अगले सर्ग १० में यह दिया कि "ऋषि मुनि लोग अति क्रूर कर्म करने वाले राक्षसों से सुख नहीं पाते क्योंकि वह लोग माँसभक्षी ठहरे। पुनः सभी के रूप भयानक तो होते ही हैं। वह आकर यज्ञ विध्वंस करने और ऋषियों को मारते पीटते हैं। अतः हम ऋषि रक्षा के लिए दुष्टों के संहारार्थ शस्त्र धारण करते हैं, दीन हीन पशुओं के मारने के लिए नहीं।"

(देखो अरण्य० सर्ग १०)

इसके अतिरिक्त जब बाल्मीकि रामायण की रचना ही एक ऐसी घटना से हुई जो सर्वथा आशिरः पाद दया पर आधारित है, तो कदापि उसका भाव अथवा इसके नायक का भोजन मांस नहीं हो सकता। वह यह है कि जब बाल्मीकि ने एक निषाद को देखा कि उसने एक क्रौंच को मारा तो इन्हें बड़ी दया आई और उस दुष्ट को शाप दिया तो भला वह दुष्ट अवगुण उनके नायक रामचन्द्र में किस प्रकार हो सकते हैं ? (देखो बालकांड सर्ग १२।९-१६)

चाणक्य ऋषि ने भी चाणक्य नीति में जो उसने महाराजा चन्द्रगुप्त (जिस ने सलूकस बाबल के बादशाह की पुत्री से विवाह किया था) के लिए बनाई थी जिसपर समस्त आयु उसका आचरण रहा लिखता है कि :—

मांसभक्षैः सुरापानै मूर्खैश्चाक्षर वर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारैं र्भाराक्रान्तास्ति मेदिनी॥

(चा० नीति ८।२२)

मांस खाने वाले, शराबी, विद्याहीन, निरक्षर भट्टाचार्य जिनमें ऐसे दुर्गुन हों, वह वास्तव में मनुष्य रूप में पशु हैं और पृथिवी पर भार रूप हैं।

पुनः उसी नीति में लिखा है कि:—

त्यजेद् धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत् क्रोधमुखीं भार्यां वि रहितान्बान्धवांस्त्यजेत्॥

(चान्नीति ४।१६)

जिस धर्म में दया नहीं है उसे छोड़ देना चाहिए और जिस गुरु में विद्या नहीं उसे भी छोड़ दे तथा लड़ने वाली और क्रोध मुखी स्त्री त्याग दे और जो तुम से प्रेम न करें ऐसे मित्रों को भी त्याग दो।

पुनः इसी नीति में लिखा है कि :—

यत्रहिंसा परो धर्मः पापिष्ठस्तत्र कीदृशः ।
मांहहारी द्विजो यत्र राक्षसस्तत्र कीदृशः ।।

जिस स्थान पर अथवा जिस मत में जीवों का मारना परम धर्म है वहां अथवा उस मत में ज्ञात नहीं पाप कैसा होगा ? और जिस स्थान पर ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य मांस सेवन करते हैं, ज्ञात नहीं वहां राक्षस कैसे होंगे ?

ऐसे ही विद्वान लोग मुद्रा राक्षस नाटक के नाम पर भी ध्यान दें यह चाणक्यजी का वचन भीष्म जी के वचन अनुकूल है। फ़ारसी महाभारत में महापातकी की व्याख्या में लिखा है कि :—

"महा पातकी आंरा गोयन्द कि ब्राह्मण रा नाहक्क कुश्तह बाशद, या तला बजीदह बाशद, या शराब व गोश्त खुर्दह बाशद, या बाज़ने उस्ताद जिना करदह बाशद, ईंरा महापातकी गोयन्द । कि बतरीके ऊला दोज़खी बाशद । (पृ० २२२ जो १०८१ का हस्तलेख है)+

ऐसे ही शुभ कार्यों और उत्तम उपदेशों से महाराज चन्द्र गुप्त एक बृहत् राज्य का सम्राट् हुआ। राजकीय नीति और सांस्कृतिक नीति में जितना यह सम्राट् चन्द्र गुप्त योग्य हुआ है, युधिष्ठिर के पश्चात् ऐसा कोई नहीं हुआ। राजाभोज के समय तक मांसभक्षण, सुरापान और दुराचार आदि से लोगों को बहुत घृणा थी। किन्तु वाममार्ग के फ़ैलने और राजाओं के दुराचारी हो जाने से दिन प्रति दिन दुष्ट कार्यों की अधिकता ही रही थी। एक बार राजा भोज की सवारी बाजार में जा रही थी। इतने में राजा ने देखा कि एक साधू संन्यासी वेश धारण किये रंगा गीदड़, प्रगट साधू किन्तु अन्तः वाममार्गी कसाई की दुकान पर मांस खरीद रहा था। उसे देख कर आश्चर्य दृष्टि से राजा भोज ने प्रश्न किया कि भिक्षो मांस निषेवणं प्रकुरुषे, किंतेन मद्यं विना। मद्यंचापि तव प्रियमहो वारां गनाभिस्सह। तासामर्थ रुचि : कुतस्तवधनं, द्यूतेन चौर्यणवा। चौर्यंद्यूत परिग्रहो पिभवतो नष्टस्यकान्यागति ।।

हे सन्यासिन ? तू मांस खाता है ? उस ने उत्तर दिया कि महाराज ? अकेला मांस नहीं खाता मद्य के साथ खाता हूं। राजा ने कहा कि क्या तू मद्य भी पीता है ? कहा, वह भी अकेला नहीं, वेश्याओं के साथ पीता हूं। राजा ने कहा कि यदि तू वेश्या गमन करता है तो धन कहां से लाता है ? क्योंकि तू तो भिक्षु है। तेरे पास धन कहां ? भिक्षु अर्थात् संन्यासी ने निवेदन किया कि महाराज मैं द्यूत क्रीडा करता हूं और चोरी करता हूं। इन कार्यों से धन प्राप्त करके लाता हूं। राजा ने पुनः कहा कि अरे भिक्षु। तू जुआरी और चोर भी है ? उसने हाथ बांध कर निवेदन किया कि महाराज ? जब भ्रष्ट ही होने लगा तो पुनः न्यूनता क्यों रहने दूं ?

प्रिय आर्य भाईयो यही अवस्था आज कल कुछ संन्यासियों की है। वह सर्वथा खाली मत हो रहे हैं। धर्म कर्म से कोई प्रयोजन नहीं। सदुपदेश करना वह अपना कर्यव्य नहीं जानते और ऐसे ही उनके मित्र कुछ गृहस्थ हैं जो उन्हें इन कार्यों के लिए धन देते हैं। आतशिक, सोजाक आदि रोगों में

+महा पातकी उसको कहते हैं कि जो ब्राह्मण (विद्वान) को निरपराध मारे, वा मद्य मांस खावे, वा गुरु की स्त्री से दुराचार करे। इसको महापातकी कहते हैं कि वह निश्चय से नरक गामी होते हैं। (अनुवादक)

ग्रसित हैं। प्रति दिन गृहस्थियों की स्त्रियों और बच्चों को बिगाड़ रहे हैं। हरिद्वार के कुंभपर जो आर्य भाई गए, उन्हें भली प्रकार ज्ञात है कि यह संन्यासी, उदासी और निर्मले भिखारी कहां २ से स्त्रियां भगा कर और बच्चों को बहका कर अपने फंदे और जाल में फंसा रहे हैं। गृहस्थियों का घर लूट २ कर और अपने देश के भोले राजाओं को गुरु पूजा का पाठ सिखा कर कैसे २ मठ बनाते हैं। केवल कौदन और मूर्ख जिन्हें किसी ज्ञान से कुछ भी काम नहीं और जिन के आचरण भी शोचनीय हैं। केवल यही नहीं किन्तु जिन्हें सत्य धर्म से कुछ भी परिचय नहीं। जिन को वासनाएं साधारण गृहस्थ से भी निचलों हैं। उनके विश्वास पर रह कर और सत्य धर्म से दूर रह कर मांसाहार के चसके में चूर हो कर तथा मद्य पान के नशे में भर पूर हो कर आप कब तक कुंभकरण की निद्रा में सोते रहोगे ? कृपा पूर्वक ईश्वर के नाम पर जागो और अपने वेद धर्म की रक्षा करो। लोग इसे बिगाड़ रहे हैं, खराब कर रहे हैं। वही गन्दी और घिनौनी वाममार्ग की शिक्षा और पांच मकारों की पेटियां देश और जाति तथा सत्य धर्म के विरोधी लोग यहूदी बस कर यूती की भान्ति अथवा अभिनव गुप्त की भान्ति आप में घुस कर आप के भाईयों में धीरे २ फैला रहे हैं।

ग़मेदीन खुर कि खुश ग़मे दीनस्त।
जुमला ग़म हाए फ़िरोतर ईंनस्त ॥×

प्रिय भाईयो ? धर्म की रक्षा करो। उसे अधर्म से बचाओ ' धर्म करो, धर्म करो और पाप से बचो। साहस पूर्वक कटिबद्ध हो जाओ। तुम्हारे सम्पूर्ण यत्न जअफरियों के जीत ने और सत्य धर्म प्रचार के यत्न में खर्च होने थे। वह घर के सुधार में खर्च हो रहे हैं। विधर्मियों में कार्य करने का समय था। हम स्वयं रुग्ण हो गये किन्तु पुनरपि परमेश्वर का सहस्रों वार धन्यवाद है कि हमें समय पर सूचना मिल गई। सुरंग लगाने से पूर्व सुराग (पता) लग गया। अब संभव नहीं है कि सत्यासत्य का निर्णय न हुआ करेगा।

एक को दो से गवारा।
कहीं जाना नहीं मशफ़क़ हमारा ॥

आर्य धर्म का सेवक :—
निवेदक लेखराम आर्य मुसाफिर

—०—

× धर्म की चिन्ता खाओ कि सबसे बड़ा प्रसाद कर्म चिन्तन है। शेष सब चिन्तन इससे नीचे हैं। (अनुवादक)